दर्शन-कथा

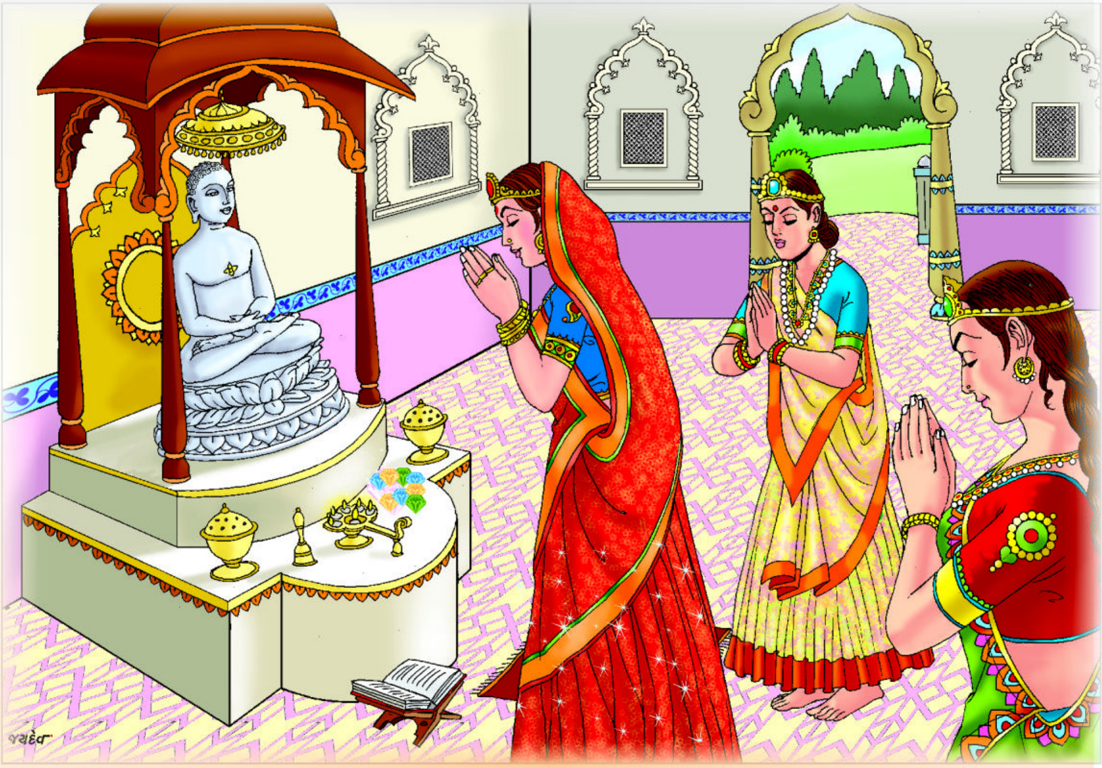

मनोवतीका गजमोतीसे जिनेन्द्र भगवानका पूजन करना।

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट

सोनगढ (सौराष्ट्र)

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ-३६४२५०

भगवान श्री कुंदकुंद-कहान जैन शास्त्रमाला पुष्प नं. २६८

ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

कवि श्री भारमल्लजी कृत

दर्शन-कथा

(मनोवती की दर्शन-प्रतिज्ञा)

卐

: गुजराती लेखक :

ब्र. हरिलाल जैन

सोनगढ

卐

: हिन्दी अनुवादक :

पण्डित देवेन्द्रकुमारजी जैन

बिजौलिया (भीलवाडा, राज.)

卐

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट

सोनगढ (सौराष्ट्र)

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ-३६४२५०

प्रथमावृत्ति प्रत : १००० वि.सं. २०७५ ई.स. २०१९

दर्शन-कथा (हिन्दी) के

✾ स्थायी प्रकाशन पुरस्कर्ता ✾

सीडनी मंडल, सीडनी

(ओस्ट्रेलिया)

ॐ

સહજ ચિદાનંદ.

मूल्य रू. 10=00

: मुद्रक :

स्मृति ओफसेट

सोनगढ (सौराष्ट्र)

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ-३६४२५०

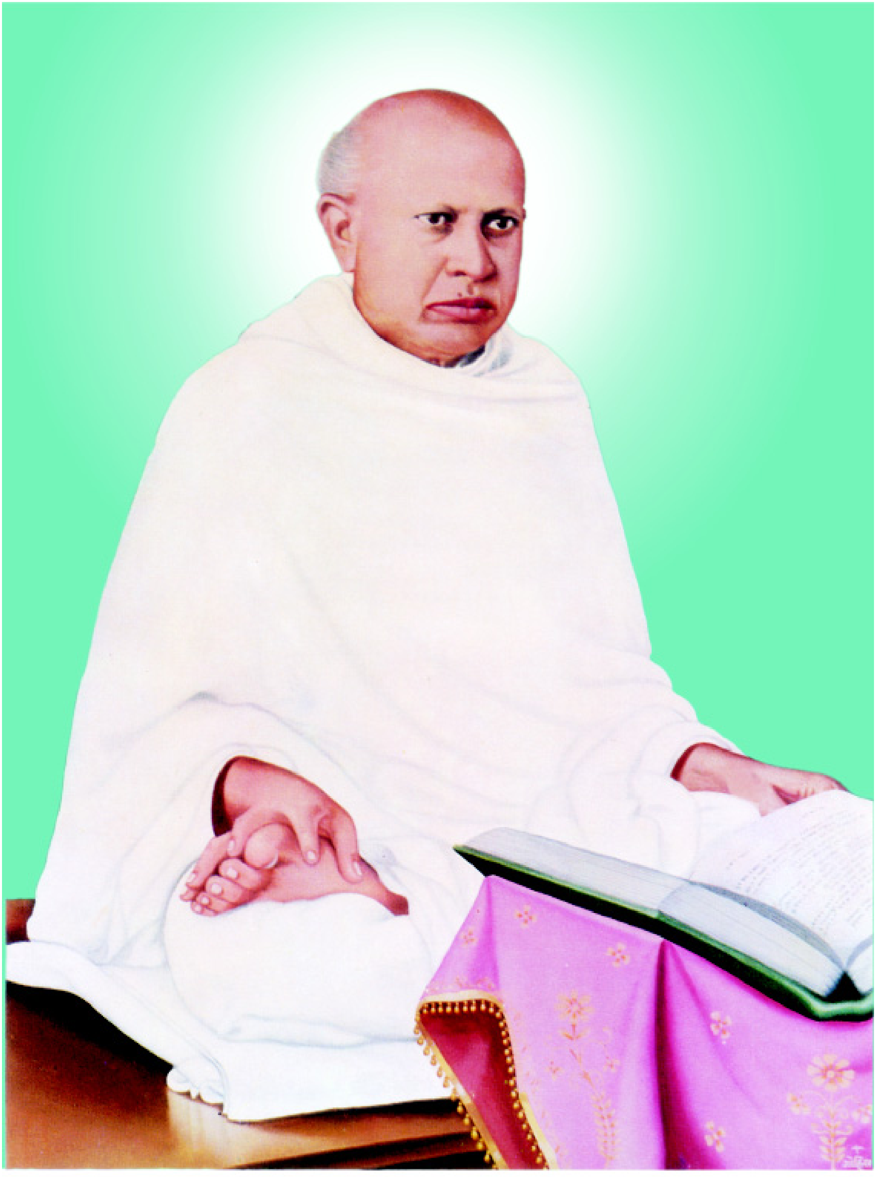

પરમ પૂજ્ય અધ્યાત્મમૂર્તિ સદ્‌ગુરુદેવ શ્રી કાનજીસ્વામી

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

प्रकाशकीय निवेदन

'दर्शन-कथा'की प्रथम आवृत्ति प्रकाशित करते हुए अत्यन्त हर्ष हो रहा है।

भगवान महावीरकी दिव्यध्वनिमेंसे प्रवाहित और कुंदकुंदादि आचार्यप्रणित गंभीर वचनोंका हार्द समझानेवाले पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी तथा तद्भक्त पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनके आत्मसाधनासे सुवर्णपुरी पवित्र तीर्थधाम बन गया है।

पुराणोंमें जिनेन्द्र भगवानके दर्शनकी महिमा जगह-जगह उपलब्ध है, जिनवरदेवके दर्शनके बिना जैनका जीवन सोचा भी नहीं जा सकता। कवि श्री भारमल्लजी रचित यह दर्शन कथाका गुजराती संस्करण पूर्वमें प्रकाशत हो चुका है। हिन्दीभाषी मुमुक्षुओंकी विशेष मांग होनेके कारण गुजराती आवृत्तिका हिन्दीमें अनुवाद करके प्रकाशित किया जा रहा है।

इस पुस्तक (गुजराती)का लेखनकार्य ब्र. हरिभाई जैन कि जिन्होंने कई कथाओंके पुस्तककी रचना की है। इसलिए ट्रस्ट उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करती है। गुजराती आवृत्तिका हिन्दी अनुवाद पंडित देवेन्द्रकुमार बिजौलिया द्वारा किया गया है। तदर्थ उनके प्रति भी आभार व्यक्त करते है। मुद्रणकार्यके लिए स्मृति ऑफसेटके निलयभाई जैनके आभारी है।

इस पुस्तक द्वारा जिनेन्द्र दर्शनकी महिमा सर्वत्र व्याप्त हो, बालकोंमें धर्मके उत्तम संस्कार प्राप्त हो और विशेषरूपसे बालक नियमित जिनदर्शनकी प्रेरणा प्राप्त करे यही भावना।

साहित्यप्रकाशक समिति
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट,
सोनगढ (सौराष्ट्र)

पूज्य बहिनश्रीकी
१०६वीं जन्मजयंती
दि. १७-८-२०१९

लेखकका निवेदन

श्री जिनेन्द्र दर्शनकी महिमादर्शक यह पुस्तक बालकोंके हाथमें प्रदान करते हुए अत्यन्त हर्ष हो रहा है। आजका युग साहित्यका युग है। आज अपने समाजके हजारों बालक उनके समझयोग्य धर्मसाहित्यके लिये लालायित हैं। बालसाहित्यके एक प्रखर हमायतीरूपसे मेरे पास सैकड़ों–हजारों बालक हमेशा माँग करते हैं कि हमें कुछ अच्छा पढ़नेको दो परन्तु उस समय उनके योग्य बालसाहित्यका अभाव देखकर हृदय पीड़ित होता है। अडी बालकोंके योग्य धार्मिक–साहित्यके निर्माणकी सर्वाधिक आवश्यकता है।

जैन पुराणों में तो जिनेन्द्र भगवानके दर्शनकी महिमा जगह-जगह उपलब्ध है, जिनवरदेवके दर्शनके बिना जैनका जीवन सोचा भी नहीं जा सकता। कवि श्री भारमल्लजी रचित यह दर्शन कथा सोनगढ़में कितने ही वर्षोंसे प्रचलित हुई थी और सर्वप्रिय बन गयी थी। ऐसी धर्मकथाएँ गुजराती भाषामें प्रकाशित हो तो बालक उत्साहसे पढ़े और उन्हें धर्मके उत्तम संस्कार प्राप्त हों, ऐसी भावनासे यह दर्शनकथा तैयार की हयी है। इस पुस्तक द्वारा जिनेन्द्र दर्शनकी महिमा सर्वत्र व्याप्त हो और विशेषरूपसे बालक नियमित जिनेन्द्र दर्शन करनेकी प्रेरणाकी प्रेरणा प्राप्त करें यही भावना है।

वीर सं. २४९४
फाल्गुन शुक्ल-२

ब्रह्मचारी हरिलाल जैन
(सोनगढ)

ॐ

परमात्मे नमः

दर्शन कथा

(धर्मात्मा मनोवती की जिनेन्द्र दर्शन प्रतिज्ञा)

हस्तिनापुर नगरी में

समस्त द्वीपों के मध्य अपना जम्बूद्वीप शोभित हो रहा है; उसमें भरत, ऐरावत, विदेह आदि सात क्षेत्र हैं। भरतक्षेत्र में कुरुजांगल देश में हस्तिनापुर नाम की सुन्दर नगरी है। उस नगरी की महिमा का क्या कहना! स्वर्गपुरी जैसी उसकी शोभा है; शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ—ये तीन चक्रवर्ती तीर्थंकरों तथा दूसरे अनेक मोक्षगामी महापुरुष इस हस्तिनापुरी में हुए हैं। राजा श्रेयांसकुमार ने मुनिराज ऋषभदेव को वर्षीतप का पारणा इस नगरी में ही कराया था। अकम्पनाचार्य आदि सात सौ मुनियों के संघ की रक्षा विष्णुकुमार ने इसी नगरी में की थी। पाँच पाण्डव भगवन्त भी यही हुए थे, ऐसी यह पवित्र नगरी बारह योजन विस्तार में अनेक बाग-बगीचों से शोभित हो रही है। यहाँ बड़े-बड़े अनेक महलों की पंक्तियाँ है और उत्तम श्रावकजन यहाँ निवास कर रहे हैं। नगरी के मध्य में विशाल जिनमन्दिर है और सोने के कलश से उसका शिखर चमक रहा है।

उस हस्तिनापुरनगरी में यशोधर नामक राजा राज्य करते हैं, वे न्यायवन्त हैं और चारों ओर उनका यश व्याप्त हो रहा है, उनके राज्य में महारथ नामक एक सेठ रहता है, वह जैनधर्म का महान भक्त है

और पुण्य के उदय से उसके घर में लक्ष्मी का पार नहीं है। उसका भण्डार बावन करोड़ स्वर्ण मोहर से भरा हुआ है और उसके महल पर बावन ध्वजाएँ फहराती हैं। उसकी सहधर्मिणी का नाम महासेना है, वह भी शीलवान और गुणवान है। उनके यहाँ देवकन्या जैसी एक पुत्री हुई, उसका नाम मनोरमा था।

मनोरमा का बालपन

मनोरमा रूपवन्ती और गुणवन्ती है, वह आठ वर्ष की होने पर विद्वान के पास पढ़ने लगी और थोड़े ही समय में उसने अनेक विद्याएँ पढ़ लीं, शास्त्रों का भी अभ्यास किया। उसके मुख से विद्या की चर्चा सुनकर माता-पिता आनन्दित होते थे। दूज के चन्द्रमा की भाँति बढ़ते-बढ़ते मनोरमा सोलह वर्ष की हुई, तब किसी शुभस्थान में उसके विवाह के लिये माता-पिता को चिन्ता हुई और पुरोहित को बुलाकर योग्य वर की खोज के लिये भेज दिया। धर्म में तथा कुल में और सम्पदा में अपने समान हो, ऐसे उत्तम वर की शोध करने की आज्ञा करके पुरोहित को विदा कर दिया। ऐसे वर और घर की शोध में देश-विदेश में घूमते हुए उसे छह महीने तो व्यतीत हो गये। पश्चात् क्या हुआ ? यह कहते हैं—

वल्लभीपुर में सगाई

मनोरमा के लिये योग्य वर खोजते हुए देश-विदेश में भ्रमण करते हुए वह पुरोहित अवन्ती देश के वल्लभीपुर नगर में आ पहुँचा। देवपुरी उस नगरी को देखते ही वह बहुत आनन्दित हुआ, वहाँ जगह-जगह माणिक मोती की झालर झूलती थी और मुक्ताफल तथा स्वर्णमुद्रा के ढ़ेर नजरों से दिखायी देते थे। बड़े-बड़े जिनमन्दिर, स्वर्ण के कलशों से और मणिरत्नों से शोभित हो

रहे थे। उत्तम राजा वहाँ राज्य करता था और जैनधर्म पालक उत्तम श्रावक उस नगरी में निवास करते थे। उसी नगरी में सोमदत्त नामक सेठ विशेष धनवान थे, उनकी सहधर्मिणी हेमश्री और सात पुत्र थे। उनमें से छह पुत्रों के तो विवाह हो गये थे और सबसे छोटा पुत्र बुधसेन अभी अविवाहित था; वह प्रवीण और रूपवान था। उसे देखकर पुरोहित का विचार हुआ कि यह योग उत्तम है, मनोरमा के लिये यह बुधसेन सब प्रकार से योग्य है। इस प्रकार विचार कर उस पुरोहित ने सोमदत्त सेठ से इस सम्बन्ध में बात करते हुए कहा हे सेठजी! हस्तिनापुर के महारथ सेठ अपनी पुत्री मनोवती का विवाह आपके पुत्र बुधसेन के साथ करना चाहते हैं। पुरोहित की यह बात सुनकर सेठ सोमदत्त बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने अपनी सम्मति प्रदान कर दी। तुरन्त ही नगरजनों को बुलाया और अनेक महिलाएँ मंगल गीत गाने लगीं। सज्जनों का सम्मान किया और याचकों को दान दिया। जिनमन्दिर में धूमधाम से महान पूजा का आयोजन किया और शुभमुहूर्त में कुँवर को तिलक किया गया। तत्पश्चात् बहुत धन इत्यादि भेंट देकर पुरोहितजी को विदा किया गया। वहाँ से शीघ्र रवाना होकर पुरोहितजी थोड़े ही दिनों में हस्तिनापुर पहुँच गये और सेठजी को समस्त वृत्तान्त अवगत कराया, जिसे सुनकर सेठ को महान हर्ष हुआ और सबने इस सम्बन्ध की प्रशंसा की। इस प्रकार मनोवती की सगाई हुई।

★ ★ ★

जब मनोवती को अपनी सगाई की बात का परिज्ञान हुआ और उसे लगा कि अब अल्प काल में विवाह हो जायेगा, तब एक दिन श्री जिनधर मुनिराज का उस नगरी में आगमन हुआ। हजारों

नगरजन मुनिराज के दर्शन करने उमड़ पड़े। मनोवती भी भक्तिपूर्वक मुनिराज का दर्शन करने गयी... अहा! वीतरागी सन्त मोक्ष के साधक, संसार के त्यागी—ऐसे सन्त के दर्शन करते हुए और उनका चैतन्यरस झरता उपदेश सुनते हुए मनोवती को अपार हर्ष हुआ। भक्तिभावपूर्वक श्री मुनिराज को वन्दन करके उसने कहा—

हे करुणानिधि मुनिराज! आप मेरी एक प्रार्थना सुनें... मुझे कोई ऐसा व्रत प्रदान करें कि जिससे मेरा जन्म सफल हो... और मेरी धार्मिक भावना को पोषण मिला करे।

मनोवती की यह बात सुनकर मुनिराज ने वात्सल्यपूर्वक कहा—बेटी! जैनधर्म के गहरे संस्कार से तेरा जीवन धन्य बना है। तुमने जिनव्रत की प्रार्थना की है तो तू उत्तम पुष्पांजलि व्रत धारण कर और उस जिनव्रत को तू दर्शन प्रतिमासहित अंगीकार कर। यह जिनेन्द्र दर्शन महान सुखकार है; जिनदर्शन के बिना जीवन धिक्कार है... भगवान के दर्शन बिना मानव तो पशु समान है।

मुनिराज की यह बात सुनकर मनोवती ने विनयपूर्वक कहा—हे स्वामी! मैं दर्शन प्रतिज्ञा अंगीकार करती हूँ... प्रभु! मैं प्रतिदिन जिनेन्द्रदेव के दर्शन करूँ और गजमोती चढ़ाकर उनकी पूजन करूँ, तत्पश्चात् ही भोजन करूँ – यह मेरी प्रतिज्ञा है, इसमें आप साक्षी हैं। मुनिराज ने आशीर्वादपूर्वक यह प्रतिज्ञा प्रदान की।

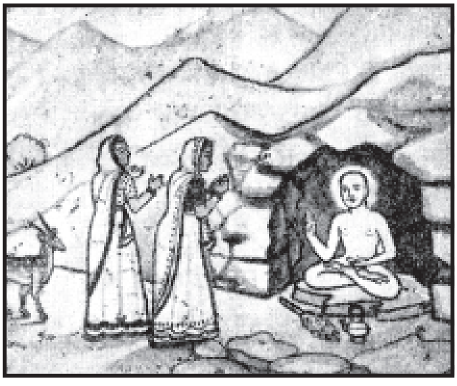

अहा ! सोलह वर्ष की कन्या जीवन भर जिनेन्द्र दर्शन की ऐसी प्रतिज्ञा करती है... उसे सन्देह नहीं उत्पन्न होता कि गजमोती जैसे मूल्यवान मोती जीवन भर कहाँ से मिलेंगे ? उसे तो जैनधर्म का और जिनेन्द्रभक्ति का रंग है। उस लगन के जोर से उसने जिनेन्द्र दर्शन की निशंक प्रतिज्ञा अंगीकार की है। मनोवती ने उच्च भावना से ऐसी दर्शन प्रतिज्ञा अंगीकार की, उसे देखकर हजारों श्रावकजन प्रसन्न हुए और धन्य.. धन्य.. कहकर उसकी प्रशंसा करने लगे।

एक प्रतिज्ञा लई शुभसार, सो सुनियो तुम मुनिव्रतधार।
गजमोतिन के पुंज चढ़ाय, तब मैं भोजन करुँ बनाय॥
इतनी दर्शप्रतिज्ञा लई, श्री मुनिवर की साक्षी दई।
लेय प्रतिज्ञा निजघर गई, सुन के तात कहे अब सही॥

घर जाकर मनोवती ने दर्शनप्रतिज्ञा के सम्बन्ध में माता-पिता को अवगत कराया। यह सुनकर पिता ने कहा—बेटी ! तूने दर्शन प्रतिज्ञा अंगीकार की है, यह तो बहुत अच्छा किया परन्तु साथ में गजमोती का पुंज चढ़ाकर ही भोजन करना, यह प्रतिज्ञा की है, इसका पालन करना कठिन पड़ेगा क्योंकि यहाँ अपने घर में तो गजमोती के ढ़ेर हैं, इसलिए तुम प्रतिदिन आनन्द से भगवान के दर्शन करो और गजमोती के पुंज चढ़ाओ, इसमें कोई दिक्कत नहीं आयेगी परन्तु जब तुम ससुराल जाओगी, तब तुम्हारी गजमोती की प्रतिज्ञा निभाना कठिन पड़ेगी।

मनोवती ने कहा—पिताजी ! पुण्योदय से वह भी प्राप्त हो जायेंगे। चाहे जैसी कठिनता में भी ली हुई प्रतिज्ञा को छोड़ा नहीं जाता। मैंने मुनिराज की साक्षी में जो दर्शन-प्रतिज्ञा अंगीकार की है, वह प्रतिज्ञा प्राण जाने पर भी मैं नहीं छोड़ूँगी।

अब जो दर्शप्रतिज्ञा लई, श्री मुनिवर की साक्षी दई।
प्राण जाये तो जावें सोय, लई प्रतिज्ञा तजे न कोय॥

—इस प्रकार मनोवती ने दर्शन प्रतिज्ञा अंगीकार की और उसकी सगाई भी हुई। दर्शन प्रतिज्ञा द्वारा जिनेन्द्र भगवान के साथ लगन लगाकर धर्म का सच्चा साथ किया और लौकिक सगाई वल्लभपुर के कुमार बुधसेन के साथ हुई। तत्पश्चात् अमुक समय उसके विवाह की तैयारियाँ होने लगीं।

मनोवती का शुभविवाह

कुँवर बुधसेन और मनोवती के विवाह की धूमधाम से तैयारियाँ होने लगीं। विवाह का दिन भी आ पहुँचा, तब वल्लभपुर से विशाल बारात के साथ बुधसेन ने प्रस्थान किया; अनेक हाथी, घोड़े, रथ, सवार और वादिन्त्रों सहित बारात शोभित हो रही थी। चलते-चलते थोड़े ही दिनों में वह बारात हस्तिनापुर में आ पहुँची और वहाँ बगीचे में डेरा-तम्बू लगा दिया। शहनाई बजने लगी और ध्वजाएँ फहराने लगीं। महारथ सेठ ने और समस्त नगरजनों ने धूमधाम से बहुत आवभगत की। षटरस भोजन का आहार कराया। बारात दरवाजे आ पहुँची, वहाँ अपार शोभा थी। कंचन (स्वर्ण) के कलश से और गजमोती के हार से तथा उत्तम वस्त्रों इत्यादि की भेंट से बारात का स्वागत किया गया। तीन दिन बारात को रखकर

चौथे दिन विदाई दी गयी। विदाई के अवसर पर पिताजी ने मनोवती को शिक्षा देते हुए कहा—

हे बेटी! तू उत्तम कुल की मर्यादारूप वर्तन करना। तुझसे बड़े हों, उनके प्रति विवेक से वर्तना और सासु की आज्ञा सिरमाथे रखना तथा जिनेन्द्रदेव के दर्शन की जो प्रतिज्ञा तुमने ली है, उसका दृढ़रूप से पालन करना।

जिनवरदर्श प्रतिज्ञा लई, सो दृढ़ कर पालो तुम सही।
इहविध तात सीख जब दई, सुन्दरि चित्त में सब धर लई॥

तत्पश्चात् बुधसेन कुमार की बारात हस्तिनापुर से विदा होकर वल्लभपुर आ पहुँची। वहाँ सबसे पहले जिनमन्दिर में जाकर नवदम्पति ने जिनेन्द्रदेव को नमस्कार किया और अष्टविध पूजा की। पश्चात् नववधु के घर में आने पर महिलाओं ने मंगल गीत गाये, याचकजनों को बहुत दान दिया गया और सज्जनों का सम्मान किया गया।

इस प्रकार बुधसेन के साथ मनोवती का विवाह सानन्द सम्पन्न हो गया। ●●

दर्शन प्रतिज्ञा का पालन

पुत्र के विवाह की प्रसन्नता में सोमदत्त सेठ ने नगर में बुलावा दिया और अनेक स्त्री–पुरुषों को भोजन हेतु आमकन्त्रित किया। नगरजन तथा कुटुम्ब–परिवार उत्तम षटरस भोजन कर रहे हैं। अन्त में घर की महिलाएँ बाकी रहीं, तब सासु ने आकर मनोवती को भोजन के लिए बुलाते हुए कहा—बहू बेटा! चलो, भोजन कर लो और सबके मन को आनन्दित करो।

तब मनोवती मन में विचार करने लगी कि मैंने तो ऐसी सुखकार जिनदर्शन प्रतिज्ञा ली है कि—

सुंदरी मन में करत विचार, दर्शप्रतिज्ञा लई सुखकार।
गजमोती के पुंज चढ़ाय, तबही भोजन करुं बनाय॥

जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करके गजमोती (अर्थात् बहुमूल्य मोती) द्वारा पूजन करने के बाद ही भोजन करूँगी। गजमोती चढ़ाये बिना भोजन करूँ, तब तो प्रतिज्ञा भंग होगी, यह तो उचित नहीं कहा जायेगा और यहाँ गजमोती नजर आते नहीं हैं; वे माँगे भी कैसे जाएँ? इस प्रकार विचारकर मनोवती ने मौन धारण किया। उसने भोजन नहीं किया और न अपने मन का रहस्य ही प्रगट किया।

सासु के बहुत कहने पर भी मनोवती ने भोजन नहीं किया। बहुत समय व्यतीत हो जाने पर भी उसने भोजन नहीं किया; इसलिए सासु वहाँ से चलकर सेठ के पास गयी और कहने लगी—हे स्वामी! इस बहू ने मौन धारण किया है, यह भोजन नहीं करती है और न कुछ स्पष्टीकरण करती है तो इसका क्या कारण है? और अब क्या करना चाहिए? इसका विचार करो।

सेठानी की बात सुनकर सेठ ने कहा—उसके साथ कुछ भी हठ नहीं करना चाहिए। वह तो भोली अनजान लड़की है और यहाँ ससुराल में संकोच करती है, जब उसका संकोच मिट जाएगा, तब वह अवश्य भोजन करेगी।

इस ओर मनोवती तो अपने व्रत में दृढ़ है और हृदय में पंच नमस्कार मन्त्र का जाप करती है; अन्न का त्याग करके अन्तर में जिनेन्द्रदेव का रटन करती है। एक दिन ऐसा का ऐसा व्यतीत हो गया और दूसरा दिन आया। सासु फिर से उसके पास आयी और कहने लगी—बहू, उठो! और भोजन करो; अब यह संकोच छोड़कर सबके साथ भोजन करो।

किन्तु मनोवती ने कुछ उत्तर नहीं दिया और दूसरा दिन भी इसी तरह बिना भोजन किये हुए व्यतीत हो गया। इस कारण सेठ ने विचार करके सबसे कहा कि इसका एक उपाय करो—मनोवती भोजन न करे तो हमारा समस्त परिवार भी भोजन छोड़ दो, जिससे तुरन्त ही सत्य बात ज्ञात हो जाएगी।

सेठजी की आज्ञा प्रमाण परिवार में सबने भोजन का त्याग कर दिया। किसी ने भोजन नहीं किया। इस प्रकार तीसरा दिन भी व्यतीत हो गया।

सम्पूर्ण परिवार एक दिन बिना भोजन के रहा, तथापि मनोवती ने भोजन नहीं किया; परिवार पर महासंकट आ पड़ा। चौथा दिन आया, तब मनोवती के पिता को इस सम्बन्धी समाचार भेजे गये। यह समाचार सुनते ही सेठ ने हस्तिनापुर से अपने पुत्र को मनोवती के समाचार ज्ञात करने हेतु भेज दिया। मनोवती का भाई वल्लभीपुर आ पहुँचा। उसके आते ही सेठ-सेठानी ने उससे कहा—हे बन्धु!

हमारी बात सुनो ! आपके आदर-सत्कार की विधि बाद में करेंगे। पहले तो आपको एक बात पूछना है—आपकी बहिन यहाँ आयी है, तब से उसने भोजन छोड़ दिया है, तीन दिन व्यतीत हो गये हैं, तथापि उसने भोजन ग्रहण नहीं किया है। अतः आपकी बहिन के समाचार ज्ञात करो और भोजन न करने का क्या कारण है, वह हमें समझाओ।

यह सुनकर भाई तुरन्त ही अपनी बहिन के पास गया और नम्रतापूर्वक अपनी बहिन से पूछने लगा—बहिन ! तुमने किसलिए मौन धारण किया है और किसलिए भोजन का त्याग किया है ? विवाह के ऐसे आनन्द में यह संकट क्यों खड़ा हुआ ? वह कहो।

तब मनोवती अपने भाई को इस प्रकार कहती है—

—: हरिगीत :—

सुंदरी तासों तबै बोली, भ्रात अब सुन लीजिये।
जिनदर्श की मैं ली प्रतिज्ञा, मुनिराज की साक्षी लिये॥
गजमोतियों के पुंज लाऊँ, जिनराज आगे जगमगें।
तब करुँ भोजन भ्रात मेरे, जासु फल सब डर भगे॥

मनोवती कहती है हे बन्धु ! आप सुने ! मैंने मुनिराज की साक्षी से जिनदर्शन की प्रतिज्ञा की है कि गजमोती द्वारा जिनदेव की पूजा करूँ, प्रभु चरणों के समीप गजमोती जगमगा उठे, तत्पश्चात् ही मैं भोजन करूँ। इन जिनदेव की उपासना से सब भय दूर होते हैं परन्तु हे भाई ! यहाँ वे गजमोती मुझे दिखायी नहीं देते हैं; अतः मैं भोजन कैसे ग्रहण करूँ ? इसलिए मैंने मौन धारण किया है। अतः अन्य कुछ बोले बिना आप मुझे यहाँ से विदा कराईये और अपने साथ पीहर ले चलिये। इस बात का भेद बाहर प्रसिद्ध नहीं कीजिए।

हस्तिनापुर पहुँचकर मैं गजमोती द्वारा जिनेन्द्र पूजन करने के पश्चात् भोजन ग्रहण करूँगी, इसलिए कोई चिन्ता की बात भी नहीं है।

मनोवती की यह बात सुनकर उसका भाई तुरन्त महल से बाहर आया और उसने सेठ से कहा—चिन्ता करने का कुछ प्रयोजन नहीं है, मेरी बहिन भोली और अनजान है, वह यहाँ बहुत संकोच कर रही है; इसलिए उसे आप शीघ्र मेरे साथ विदा कर दीजिए। वह हस्तिनापुर आकर भोजन ग्रहण करेगी।

कुमार की यह बात सुनकर सेठ ने कहा—कुमार! तुम्हारी यह बात हमें मान्य नहीं है। इसलिए इस घर में मनोवती को जो कुछ दुःख हो, उसका साफ-साफ भेद मुझे समझाइये।

तब कुमार ने कहा—सेठजी! सुनो! वास्तविक बात यह है कि मेरी बहिन ने मुनिराज की साक्षी में ऐसी दर्शन प्रतिज्ञा अंगीकार की है कि गजमोती के पुंज चढ़ाकर अरिहन्त देव की पूजा करने के पश्चात् ही वह भोजन ग्रहण करेगी और वे मोती तो यहाँ दिखायी नहीं देते; इसलिए वह भोजन किस प्रकार करे?

कुमार की बात सुनते ही सेठजी महल में गये और बहू को पुत्री समान समझकर उसकी प्रशंसापूर्वक कहने लगे—बेटी! तुम्हारी प्रतिज्ञा की यह बात तुमने मुझे क्यों नहीं बतलायी? और अभी तक

व्यर्थ दु:ख किसलिए भोगा ? अपने घर में गजमोतियों की कहाँ कमी है !

ऐसा कहकर उन्होंने तुरन्त भण्डारी को बुलवाया और भण्डार खुलवा दिया। जिसमें अनेक प्रकार के मोतियों के ढ़ेर पड़े थे; उसमें से जगमगाते गजमोती के ढ़ेर बतलाते हुए सेठजी ने मनोवती से कहा—बेटी ! हमारा महान भाग्य है कि तुम्हारी जैसी जिनभक्त बहू हमारे कुल में आयी है। देख, अपने पुण्योदय से यह मोतियों के भण्डार भरे हैं। जिन्दगी भर उपयोग करोगी तो भी कुछ कमी नहीं आयेगी। इसलिए इसमें से मन चाहे गजमोती का पुंज लेकर तुम हमेशा आनन्दपूर्वक जिनेन्द्रदेव की पूजा करना।

यह बात सुनकर मनोवती को अत्यन्त आनन्द हुआ, उसका रोम-रोम में जिनेन्द्र भक्ति का उल्लास छा गया और अत्यन्त हर्षपूर्वक जिनेन्द्रदेव की पूजन की तैयारी करने लगी। उसने स्नान किया, उत्तम वस्त्र पहिने और हाथ में गजमोती का थाल लेकर धूमधाम से जिनमन्दिर की ओर गमन किया। घर की सभी महिलाएँ भी हर्षपूर्वक मंगल गीत गाते-गाते उसके साथ चलने लगीं—

गजमोती कर में लीने, जिनभवन प्रयाण सु कीने।
जिनदर्श करे अब ताने, मन फूली न अंग समाने।

जिनमन्दिर में जाकर आनन्दपूर्वक उसने भगवान की पूजा की।

गजमुक्ता चोखे बहुत अनोखे सब निर्दोषे पुंज धरूँ,
अक्षयपद पाऊँ और न चाहुँ, कर्म नशाऊँ चरण परूँ;
श्री जिनवर वंदुं मन आनन्दूँ, सब दुःख खण्डहु चित्तधारी,
जिन वंदुं कोई भवदुःख खोई शिवसुख जोई सुख भारी॥

अहो, प्रभु जिनेन्द्रदेव आप सर्वज्ञ और पूर्ण सुखरूप हुए हैं। आपके दर्शन से हमारा आत्मा पवित्र होता है, आपके स्वरूप को पहिचानने से हमारे आत्मस्वरूप की पहिचान होती है। इस प्रकार आप हमारे आत्मा के आदर्शरूप हैं... और आप धर्मी जीव के ध्येयरूप हैं—

इस प्रकार अत्यन्त भक्तिपूर्वक प्रभु के दर्शन-पूजन करके मनोवती हर्षपूर्वक घर आयी... जिनदर्शन की प्रतिज्ञा आज चौथे दिन पूर्ण हुई, इसलिए उसने चौथे दिन भोजन ग्रहण किया। कुटुम्बीजनों ने हर्षपूर्वक उसे भोजन कराया। जो धीरजपूर्वक धर्म की आराधना करता है, उसका जीवन धन्य है।

इस प्रकार गजमोती द्वारा जिनप्रभु की पूजा करके दर्शनप्रतिज्ञा का पालन करके चौथे दिन भोजन करके, सर्व परिवार को सन्तुष्ट करके अगले दिन मनोवती अपने भाई के साथ पीहर की ओर चल दी।

मनोवती के पीहर जाने के पश्चात् यहाँ जो कुछ घटनाक्रम घटित हुआ उसकी कथा इस प्रकार है।

गजमोती के हार के लिये रानी का हठ

मनोवती तो जिनचरणों में गजमोती का ढ़ेर चढ़ाकर पीहर चली गयी। वे मोती जिनमन्दिर में जगमगा रहे हैं, तभी वहाँ मन्दिर की

मालिन जिनमन्दिर में आयी और जगमगाते हुए मोतियों का ढ़ेर देखते ही उसे आश्चर्य हुआ — अरे! ऐसा धनवान और महान भक्तिवन्त कौन आया है कि जिसने जिनमन्दिर में गजमोती चढ़ाये हैं! ऐसा विचार कर मालिन ने वे सभी मोती ले लिये और घर आकर माली को बताये।

ऐसे कीमती मोती देखकर माली ने कहा—यह तो बहुत कीमती गजमोती है, लोक में इनकी बहुत प्रसिद्धि है; राजा को ज्ञात होगा तो वह अपने से इन्हें छीन लेगा और अपने को चोर समझेगा। इसलिए ये मोती अपने घर में रखना उचित नहीं है। इसलिए हे मालिन! तू ऐसा कर कि जिससे अपने को कुछ धन प्राप्त हो। बगीचे में से चम्पा-चमेली के उत्तम फूल लाकर इन गजमोतियों के साथ उन्हें गूँथकर एक सुन्दर हार की रचना कर और महारानी के गले में वह हार पहिना दे, जिससे प्रसन्न होकर रानी ईनाम देगी। इसलिए दूसरे सभी विचार छोड़कर शीघ्रता से यह कार्य कर।

यह बात सुनकर मालिन बगीचे में गयी और चमेली इत्यादि के फूल लाकर उसमें कली-कली में गजमोती पिरोकर सुन्दर हार तैयार किया, उस हार को लेकर वह रनवास में पहुँच गयी। वहाँ द्वार पर पहुँचकर उसे विचार आया कि राजा के दो रानियाँ हैं, उसमें से यह हार किसे पहनाऊँ? छोटी रानी को पहनाऊँ या बड़ी रानी को? छोटी रानी को पहनाऊँ तो बहुत ईनाम मिलेगा। ऐसा विचार कर वह छोटी रानी के महल में गयी और उसके कण्ठ में हार पहना दिया। रानी उस हार को देखकर अत्यन्त प्रफुल्लित हुई और उसने मालिन को बहुत पारितोषिक प्रदान किया। मालिन उसे लेकर अपने घर आ गयी।

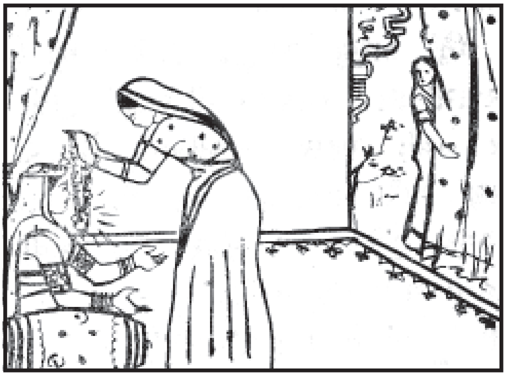

अब यहाँ जब मालिन ने छोटी रानी को हार पहिनाया, तब बड़ी रानी के महल की दासी भी वहाँ थी, उसने वह हार देखा और बड़ी रानी के पास जाकर कहने लगी कि हे महादेवी! महाराज आपसे अप्रसन्न लगते हैं, मैंने छोटी रानी के महल में यह नजरों से देखा है; दूसरों की तो क्या बात, मालिन जैसी साधारण महिला भी आपको निन्द्य समझती है। वह छोटी रानी को गजमोती का हार देती है किन्तु आपको हार नहीं देती। अरे! खेद है कि आपका ऐसा अपमान हुआ।

दासी का बात सुनकर महारानी मन में एकदम क्रोधित हो गयी, उसने अन्न-जल का परित्याग कर दिया और मुख भी नहीं धोया। जब दोपहर हुई और महाराजा भोजन के लिये महल में पधारे, तब दासी ने हाथ जोड़कर कहा —हे महाराज! सुनिये, महारानी नाराज हुई हैं और उन्होंने अन्न-जल त्याग दिया है, मुख भी नहीं धोया है और बहुत रुदन कर रही है।

यह सुनकर राजा तुरन्त महल में पहुँचे और उन्होंने प्रेमपूर्वक रानी से इसका कारण पूछा, तब रानी विलाप करते हुए बोली— हे स्वामीनाथ! आपको छोटी रानी प्रिय है और मेरा कुछ आदर नहीं है; महाराज! दूसरों की तो क्या बात, एक मालिन भी मेरा तिरस्कार करती है, वह गजमोती और चमेली के फूल से गुंथित एक सुन्दर हार लायी थी किन्तु मेरे महल के सन्मुख उसने देखा तक नहीं और

छोटी रानी के महल में जाकर उसके गले में वह हार पहनाया। मेरा ऐसा अपमान हुआ, इसलिए मेरे जीवन को धिक्कार है। अब मुझे कुछ सुहाता नहीं है, अब तो मैं अपने प्राण त्याग दूँगी।

रानी की यह बात सुनकर महाराज ने उसे आश्वासन देते हुए कहा—हे देवी! तू मन में जरा भी चिन्ता न कर और प्रसन्न रह। तुम्हारे लिये भी मैं सुन्दर हार अभी बनवाता हूँ, उसके हार में तो मालिन ने गजमोती के साथ पुष्प गुँथे थे किन्तु मैं तुम्हारे लिये तो मात्र गजमोतियों का सुन्दर हार बनवाऊँगा।

इस प्रकार राजा द्वारा आश्वासन प्राप्त होने से रानी का मन शान्त हुआ और उसने स्नानादि करके हर्षपूर्वक भोजन किया। राजा भी भोजन करके तुरन्त राज्यसभा में आ पहुँचा।

राजदरबार भरा हुआ है, अनेक प्रधानों सहित विशाल सभा बैठी है। राजा के पधारने से सब आनन्दित हुए। राज्यकारभार का काम शुरु हुआ तो महाराज ने जयपाल नामक मन्त्री को बुलाकर आज्ञा देते हुए कहा—हे मन्त्रीवर! नगर में जितने जबेरी हों, उन सबको दरबार में बुलाइये, ध्यान रहे कोई बाकी न रह जाए।

राजा का हुक्म सुनकर मन्त्री तुरन्त नगर में गया और जबेरियों की दुकान पर जाकर कहा कि महाराज आप सभी को याद करते हैं और राज्यसभा में बुला रहे हैं। आवश्यक कार्य है, इसलिए विलम्ब नहीं करते हुए आप सभी राज्यदरबार में पहुँचे।

यह सुनकर जबेरी मन में विचार करने लगे कि अचानक ऐसा क्या कार्य आ पड़ा कि महाराज ने सभी जबेरियों को बुलाया है! अवश्य कोई विशेष कारण होगा, इसलिए हम सब जवेरियों को एक

सरीखा जवाब देना चाहिए। साथ ही हम सबकी ओर से एक सेठ जवाब दे, ऐसा भी उन्होंने निश्चित किया। यह कार्य सोमदत्त सेठ को सौंप दिया गया और सोमदत्त सेठ के नेतृत्व में बल्लभपुर के सभी जबेरी राज्यसभा में पहुँचे।

राजा ने उनका सम्मान करते हुए यथास्थान बैठाया। पान, सुपारी प्रदान किये। थोड़ी देर उनके व्यापार-धन्धे की बातचीत करके पश्चात् राजा ने हँसते-हँसते कहा—सेठजी! आप हमें गजमोती प्रदान करें। उत्तम गजमोतियों का एक हार बनवाना है, इसलिए चाहे जो मूल्य लगे, वह लेकर आप सब जबेरी चाहे जहाँ से गजमोती लाकर प्रदान करें।

राजा ने गजमोती की माँग की है, यह सुनकर सब जबेरी घबराने लगे क्योंकि बाजार में कहीं गजमोती उपलब्ध नहीं थे। किसी ने जवाब देने की हिम्मत भी नहीं की। अन्त में सोमदत्त सेठ ने कहा—महाराज! अब तो गजमोती उत्पन्न नहीं होते। राजा ने बारम्बार पूछा और गजमोती कहीं से भी मिले तो मँगाकर देने को कहा परन्तु सेठ ने तो एकदम इंकार ही कर दिया कि गजमोती कहीं मिलते ही नहीं। यह सुनकर जैसे अग्नि में घी डालने से वह प्रज्वलित हो जाती है, उसी प्रकार राजा का क्रोध भड़क गया। उसने जवेरियों से कहा कि कोई चिन्ता नहीं है, दस-बीस दिन में या चार-छह महीने में कहीं से गजमोती मिले तो खोज करो और सब अपने-अपने भण्डार में भी जाँच करो—ऐसा कहकर राजा ने जबेरियों को विदा किया।

सोमदत्त सेठ की चिन्ता... बुधसेन को निष्कासन

सोमदत्त सेठ घर आकर चिन्तामग्न हो गये और विचार करने लगे कि अरे ! अब क्या होगा ? राजा नाराज हुआ है । अब थोड़े दिन ही जीवन है । ऐसा क्या कारण बना कि राजा को गजमोती की हठ लगी है। घर में गजमोती सम्हालकर राजा से बचाना मुश्किल पड़ेगा। मनोवती पुत्रवधु अभी तो पीहर गयी है परन्तु जब वह वापिस आयेगी, तब जिनमन्दिर में वह गजमोती चढ़ाये बिना नहीं रहेगी और जब राजा को इस बात का परिज्ञान होगा कि मेरे घर में गजमोती थे, तो भी मैंने नहीं दिये, तब तो वह मेरी समस्त लक्ष्मी लूट लेगा । अरे ! ऐसी बहू घर में कहाँ से आयी कि जिसने जिनदर्शन की ऐसी प्रतिज्ञा ली है ! ऐसे विचार से सोमदत्त सेठ मन ही मन में जिनदर्शन की निन्दा करने लगा । इस कारण उसने घोर पाप का बन्ध कर लिया।

जिनदर्शन की अथवा देव-गुरु-धर्म की निन्दा से बहुत पाप लगता है । जगत में चाहे जैसी प्रतिकूलता आ पड़े तो भी देव-गुरु-धर्म की आराधना में दृढ़ रहना चाहिए। चाहे जैसी कठिनता के समय भी देव-गुरु-धर्म को भूलना नहीं चाहिए।

सोमदत्त सेठ ने गजमोती के मोह से जिनदर्शन की निन्दा की, इस कारण महान पाप का बन्ध किया । अन्त में विचार करके उपाय खोजने के लिये उसने अपने छह पुत्रों को बुलाया और उन्हें समस्त परिस्थिति अवगत करा दी।

पुत्रों ने कहा—पिताजी ! यह तो ठीक नहीं हुआ। अब दूसरा तो कोई उपाय नहीं है, एक ही उपाय है कि छोटे कुँवर बुधसेन को

घर से निकाल दीजिए। उसकी पत्नी शीलवती है, इसलिए उसके बिना वह भी इस घर में नहीं आएगी। इस प्रकार अपने घर में गजमोती है, यह बात प्रसिद्ध नहीं होगी। इस तरह अपने प्राण बच सकेंगे। दूसरा तो कोई उपाय नहीं है।

बड़े पुत्र की यह बात सुनकर सेठ ने कहा—अरे! वह पुत्र निर्दोष, गुणवान है; जिसने इस घर में जन्म धारण किया है, उसे घर से कैसे निकाला जा सकता है?

सेठ की बात सुनकर बड़े पुत्र पुत्र ने कहा—हे पिताश्री! सुनो! अभी राजा की आफत से बचने का दूसरा कोई उपाय नहीं है, छोटे भाई को घर से निकाल दीजिए और यदि वह लघु पुत्र आपको विशेष प्रिय हो तो उसे घर में रखिये और हम छहों भाई अन्यत्र चले जाते हैं। वह होगा तो हम यहाँ नहीं रहेंगे।

यह सुनकर सेठ अनेक प्रकार से रुदन करने लगा... क्या करना, यह उसे सूझता नहीं था। उसके मुँह से कोई शब्द नहीं निकल पा रहे थे। वह विचार करने लगा कि अरे! यह कैसी दैव गति है! यदि छोटे पुत्र को घर से निकालता हूँ तो जगत में मेरा अपयश होगा और यदि उसे घर में रखता हूँ तो ये छहों पुत्र घर में नहीं रहेंगे। अन्ततः पत्र हाथ में लेकर कम्पित हाथ से बुधसेन के लिये चिट्ठी लिखने लगे परन्तु हाथ ने साथ नहीं दिया, आँख में से आँसू बहने लगे और मन बहुत व्याकुलित हो गया।

यह देखकर बड़े पुत्र ने क्रोधपूर्वक वह पत्र अपने हाथ में ले लिया और उसमें लिखा—'हे बुधसेनकुमार! पिताजी ने तुम्हें हुक्म किया है कि तुम इस घर में पैर नहीं दोगे। यदि पिताजी की आज्ञा तोड़कर तुमने घर में पैर दिया तो तुम्हारे जीवन को धिक्कार है।'

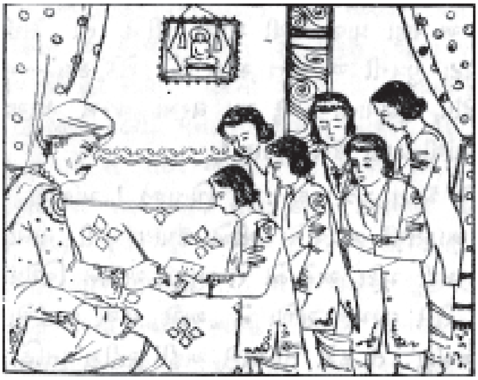

इस प्रकार पत्र में लिखकर, वह चिट्ठी दासी को दे दी और महल के दरवाजे पर बैठाकर छहों भाई दुकान पर चले गये... और वहाँ से छोटे भाई बुधसेन का घर भेज दिया।

रे, स्वार्थमय संसार! मोती के मोह के कारण अपने सगे भाई को निकाल देने हेतु भाई तैयार हो जाते हैं!!

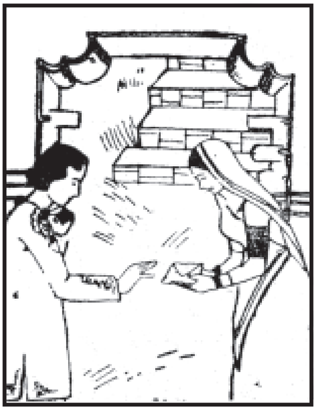

बुधसेनकुमार बड़े भाईयों के कहने से तुरन्त उठकर घर की ओर चल दिया। उसे इस बात के रहस्य की कुछ खबर नहीं थी। जब वह महल के दरवाजे पर पहुँचा तो दासी ने तुरन्त एक चिट्ठी बतलाकर कहा—कुँवरजी! पहले यह चिट्ठी पढ़ो, पश्चात् महल में प्रवेश करो... यह पिताजी की आज्ञा है।

कुँवर ने वह चिट्ठी पढ़ी और उसमें अपने देश निष्कासन की आज्ञा पढ़कर वह विचार में पड़ गया—अरे, यह क्या! यदि मैं पिताजी की आज्ञा पालन न करूँ तो मेरे जीवन को धिक्कार है। ऐसा विचार कर वह छोटा कुँवर तुरन्त वहाँ से वापिस चल दिया और नगर के बाहर निकल गया। वहाँ जाकर प्रथम तो पंच परमेष्ठी भगवन्तों को स्मरण करके संसार के स्वरूप का चिन्तवन करने लगा कि अरे, इस जगत में लक्ष्मी के मोह को धिक्कार है! मेरे छह

भाई कमाऊ हैं और मुझे लक्ष्मी का भाग न देना पड़े, इसलिए देश निष्कासन किया है। अरे, यह संसार कैसा स्वार्थमय है ! अब मैं भी परदेश जाकर धन कमाकर लाऊँगा और सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करूँगा। इस प्रकार विचार करते हुए कुँवर को अपनी पत्नी मनोवती का स्मरण आया, वह शीलवती स्त्री धर्म के उत्तम संस्कारवाली है। यदि मुझे घर में से निष्कासन की बात वह सुनेगी और कदाचित् मुझे नहीं देखेगी तो अवश्य उसके प्राणों का वियोग हो जाएगा। इसलिए पहले हस्तिनापुर जाकर उसे समस्त वृत्तान्त से अवगत करा दूँ और पश्चात् परदेश जाऊँ, ऐसा निश्चित करके कुँवर ने हस्तिनापुर की ओर प्रयाण किया।

छोटा कुँवर अकेला हस्तिनापुर के मार्ग में चला जा रहा है। ताप से उसका सुकोमल मुख मुरझा रहा है, मार्ग में विश्राम करते-करते वह रंगमहल में सोनेवाला और हाथी पर सवारी करनेवाला कुमार आज अकेला पैदल गमन कर रहा है... देखो, कर्म की गति ! उसे कौन मिटा सकता है !

★ ★ ★

हस्तिनापुर में

चलते–चलते कुमार कुछ दिनों में हस्तिनापुर पहुँच गया और वहाँ ससुर के बगीचे में जाकर विश्राम करने लगा। सोते–सोते कुँवर के मन में विचार आया कि थोड़े ही दिन पहले जब मैं विवाह के लिये यहाँ आया था, तब मेरे साथ अनेक ठाट–बाट, सैंकड़ों वाद्ययन्त्र और निशान डंका थे और अभी मैं इस प्रकार से अकेला हूँ। बिना बुलाये जाऊँगा तो मेरे परिवार की हँसी होगी; इसलिए थोड़ी देर विश्राम करके मैं यहाँ से वापिस चला जाऊँगा। इस प्रकार विचार कर, प्रवास के कारण थका हुआ बुधसेन कुमार उस बगीचे में निद्राधीन हो गया... अतिशय थकान के कारण उसे नींद आ गयी।

बगीचे में सोये हुए बुधसेन पर दृष्टि पड़ते ही मालिन ने तुरन्त माली के निकट जाकर कहा कि अपने बगीचे में सेठ के दामाद आये हैं और सो रहे हैं। माली ने शीघ्र ही सेठ के निकट जाकर यह समाचार कह सुनाया।

यह सुनकर सेठ ने विचार किया कि यह ऐसा क्या कारण बना है कि कोष्ठाधिपति का यह पुत्र बिना बुलाये यहाँ ससुराल आया है। क्या चोर इसका धन चुरा ले गये होंगे अथवा क्या राजा ने इसे लूट लिया होगा? उस समय समीप में बैठे हुए दूसरे जवेरियों ने कहा— सेठजी! लक्ष्मी तो अत्यन्त चंचल है, उसका कोई विश्वास करनेयोग्य नहीं है। मनुष्य क्षण में रंक बन जाता है, कर्मोदयवश आज का राजा कल घर–घर भीख माँगता है। इसलिए यहाँ आये हुए दामाद को आदरसहित घर लेकर आओ और उसे कुछ धन प्रदान करो, जिससे वह व्यापार करे।

यह सुनकर सेठ बगीचे में पहुँच गया। कुँवर को इस बात की

कुछ खबर नहीं थी, वह तो सो रहा था। सेठ ने उसे झिंझोड़कर जगाया और रथ में बैठाकर महल में ले गया। वहाँ अनेक प्रकार से आदरपूर्वक उसे भाँति-भाँति के भोजन कराये और घर की स्त्रियों को कह दिया कि इनसे तुम कुछ मत पूछना, इन्हें अपमान लगे, ऐसी कोई बात नहीं करना—परन्तु स्त्रियों की जाति तो अत्यन्त चंचल होती है, वे घुसपुस किये बिना नहीं रह सकतीं। एक स्त्री ने दूसरी से कहा—हे सखी! यह कुमार बिना बुलाये ससुराल क्यों आया है, इसकी खोज कर। तब उस चतुर स्त्री ने कहा कि यदि हम कुँवर से कुछ पूछेंगे तो सेठजी अत्यधिक क्रोधित होंगे। इसलिए एक युक्ति करो, वह यह कि मनोवती सुन्दरी का इसके साथ मिलाप करा दो, इसलिए वह सब बात जान लेगी। उसके सामने कुँवर सब सत्य बात कह देंगे और सेठजी को पता पड़े तो भी कोई दिक्कत नहीं आएगी।

रात्रि में कुँवर बुधसेन और मनोवती दोनों मिले, तब सुन्दरी ने प्रेमपूर्वक यहाँ आने का कारण पूछा। उत्तर में कुँवर ने कहा कि छह भाई कमाते हैं और मैं कमाता नहीं हूँ; इसलिए मुझे घर में से छुट्टी कर दी है। अब मैं परदेश धन कमाने के लिये जा रहा हूँ, इसलिए तुम्हें सूचना देने के लिये आया हूँ। हे देवी! तुम चिन्ता नहीं करना; मैं थोड़ी ही दिनों में वापिस आ जाऊँगा।

तब मनोवती ने कहा—हे स्वामीनाथ! मेरी प्रार्थना सुनो। आप रंगमहल में रहनेवाले और सुकोमल शैय्या पर सोनेवाले हो, धूप देखते ही आपका शरीर मुरझा जाता है, ऐसा कोमल है। आप किस प्रकार परदेश में रह सकेंगे? इसलिए आप यहाँ हस्तिनापुर में ही रहें और मेरे पिताजी से धन लेकर व्यापार करें।

मनोवती की यह बात सुनकर कुमार ने कहा—हे देवी ! यदि दामाद, ससुर के यहाँ रहता है तो उसके कुल की शोभा नहीं है, वह अपनी प्रतिष्ठा गँवाता है। इसलिए मैं यहाँ हस्तिनापुर में नहीं रहूँगा, परदेश जाऊँगा।

मनोवती ने बारम्बार बहुत प्रार्थना की किन्तु कुँवर अपने निश्चय में अडिग रहा, तब अन्त में मनोवती ने कहा—हे प्रिय ! मेरी एक बात सुनो। आप परदेश जा रहे हो तो मुझे भी साथ में लेकर चलो।

कुँवर ने कहा—स्त्री को परदेश में ले जाना योग्य नहीं है; इसलिए तुम यहीं रहो।

मनोवती बोली—यह बात बननेवाली नहीं है; या तो मुझे साथ लेकर जाओ अथवा आप यहीं रह जाओ।

कुँवर ने कहा—देवी ! तुम किंचित् भी चिन्ता किये बिना कुछ समय पीहर में सुख से रहो। मैं परदेश से धन कमाकर शीघ्र ही लौट आऊँगा।

कुँवर के उत्तर में मनोवती ने कहा—स्वामी ! पतिव्रता स्त्रियाँ हमेशा पति के सुख से ही सुखी होती है। दुःख में भी वे पति का साथ नहीं छोड़ती। आप परदेश में अनेक कष्ट भोगेंगे और मैं यहाँ महल में सुख-चैन से पड़ी रहूँगी, तब तो मेरे जीवन को धिक्कार है। इसलिए अधिक क्या कहना ? मुझे साथ लेकर ही जाना पड़ेगा।

कुँवर—हे देवी ! निश्चित समझो कि यह बात असम्भव है।

मनोवती—हे स्वामी ! सुनो, यदि मुझे साथ लिये बिना आप यहाँ से एक कदम भी आगे बढ़ायेंगे तो निश्चित ही मेरे प्राण छूट जाएँगे।

अन्ततः जब कुँवर ने यह जान लिया कि मनोवती यहाँ किसी भी प्रकार से रहने को तैयार नहीं है। यदि मैं हठपूर्वक इसे यहाँ छोड़कर चला जाऊँगा तो पुनः इसका मिलना सम्भव नहीं है। इसलिए अन्त में उसने कहा—यदि तुम्हें साथ आना हो तो मेरी एक बात अवश्य मानना पड़ेगी। यदि मैं इन गहनों सहित तुम्हें ले जाता हूँ तो लोग कहेंगे कि ठगने के लिये आया था। इसलिए तुम्हारे शरीर पर जितने गहने हैं, वे सब उतारकर पलंग पर छोड़ दो और फिर मेरे साथ चलो।

मनोवती ने निःसंकोच समस्त गहने उतारकर पलंग पर डाल दिये और इस प्रकार समस्त गहनों का परित्याग कर वह पति के साथ परदेश गमन के लिये तत्पर हो गयी।

अर्धरात्रि के समय दरवाजा खोलकर दोनों हस्तिनापुर से चल निकले। देखो, कर्म की विचित्रता! उसके संयोग को कौन बदले? बड़े महल में रहनेवाली और कोमल शैय्या पर सोनेवाली फूल जैसी कोमल कुँवरी नंगे पैर चलती हुई तेज धूप में पति के पीछे जा रही है। धूप की गर्मी से उसका शरीर कुम्हला रहा है। उस पतिव्रता नारी को धन्य है कि जिसने पति के लिये समस्त सुख-सामग्री का परित्याग कर दिया और पति के साथ एकाकी चल पड़ी। दिन और रात की अवगणना किये बिना वे दोनों दम्पति परदेश के पन्थ में

चले जा रहे हैं। इस प्रकार चलते-चलते चार दिन पश्चात् वे रत्नपुर पहुँच गये।

सो चार दिना लों जानें, भोजन जु करो न ताने
जिनदर्श कहाँ है ताको, गजमोती कहाँ है याको॥
भर्ता जतलाय न नारी, ली दर्श-प्रतिज्ञा भारी।
जा धन्य जन्म अवतारी, धन्य धीरजवंती नारी॥

★ ★ ★

दर्शन प्रतिज्ञा की कसौटी और दृढ़ता

चार दिनों से मनोवती ने कुछ खाया नहीं था। यहाँ जिनदर्शन कहाँ से करे और गजमोती कहाँ से लावे? इस प्रकार जिनेन्द्रदेव के दर्शन की जो उत्तम प्रतिज्ञा ली है, उसका पालन मनोवती दृढ़तापूर्वक उत्साह से कर रही है; चार दिन होने पर भी पति को इस बात का पता नहीं पड़ने दिया। अहा, उसकी धीरज और दृढ़ता को धन्य है!

रत्नपुर के बाग में आकर दोनों बैठे हैं परन्तु उनके पास कुछ धन तो है नहीं; मात्र जिनवर भगवान का नाम ही सहायरूप है—

नगर रत्नपुर बाग में, सो बैठे अब जाये।
गाँठ कछू जाके नहीं, जिनवर नाम सहाय॥

चार दिन होने पर भी उसे खेद नहीं है, उकताहट नहीं है, वह अपने हृदय में जिनेन्द्रदेव की महिमा का चिन्तन करते हुए धर्मभावना को पुष्ट कर रही है। एक बार बगीचे में मनोवती अपने केश सँवार रही थी, तभी उनमें से एक उत्तम नग निकल पड़ा, जिसे लेकर उसने अपने पति को देते हुए कहा—स्वामी! शीघ्रता में भूल से यह नग बाकी रह गया है, इसे लेकर आप नगरी में जाएँ और

इसे बेचकर भोजन सामग्री ले आयें। इस प्रकार बुधसेन कुमार नग बेचकर भोजन सामग्री ले आया। मनोवती ने मिष्ट भोजन तैयार करके पति को भोजन कराया किन्तु स्वयं ने भोजन नहीं किया। जब पति ने उसे भोजन करने को कहा तो उसे समझाकर उद्यम-धन्धे के लिये गाँव में भेज दिया और तत्पश्चात् अपने हिस्से की बची हुई रसोई याचकजनों को प्रदान कर दी और बगीचे में बैठे-बैठे शान्तिपूर्वक जिनेन्द्र भगवान का चिन्तवन करने लगी।

कहाँ सु जिनदर्शन मिले, कहाँ गजमोती सार।
कैसे भोजन वह करे, धर्मधुरन्धर नार॥

यहाँ उसे कहाँ जिनदर्शन मिलें और कहाँ से गजमोती मिलें? उसके बिना यह धर्मधुरन्धर नारी भोजन कैसे करे?

मनोवती प्रतिदिन पति को भोजन कराती है परन्तु स्वयं भोजन नहीं करती। इस प्रकार भोजन के बिना तीन दिन व्यतीत हो गये। चार दिन मार्ग में हुए और तीन दिन यहाँ हुए; इस प्रकार सात दिनों से बिना भोजन के प्राण सूखने लगे परन्तु उसने अपनी प्रतिज्ञा का परित्याग नहीं किया। प्राण जाये तो स्वीकार है, परन्तु वह अपनी धीरज छोड़ने को तत्पर नहीं है, प्रतिज्ञा पालन के लिए कटिबद्ध है, दृढ़ता से प्रतिज्ञा का पालन कर रही है। यहाँ कथाकार कवि उसे धन्यवाद प्रदान करते हुए कहते हैं कि—

धन्य जन्म ताको अवतार, धन्य प्रतिज्ञा पालनहार।
यह तो कथा यहाँ ही रही, आगे और सुनो जो भई॥

अब कथा यहाँ से स्वर्गलोक में जाती है, वहाँ क्या बनाव बनता है, वह देखिये।

★ ★ ★

देवलोक में प्रशंसा और प्रतिज्ञा का पालन

पहले स्वर्ग में सौधर्म इन्द्र विराजमान हैं, उनकी अनुपम सभा भरी हुई है। समस्त देव बैठे हुए हैं और धर्म गोष्ठी चल रही है, तभी इन्द्र महाराज ने अपने अवधिज्ञान में पृथ्वी पर बन रही उक्त घटना जान ली और देवों को सम्बोधन करते हुए कहा—हे देवो! मेरी बात सुनो! मध्यलोक में जैनधर्म की परमभक्त एक नारी है, उसने जिनदर्शन की ऐसी प्रतिज्ञा ली है कि गजमोती द्वारा जिनेन्द्र भगवान की पूजा के पश्चात् ही भोजन करूँगी—

इक तिया जु है भूलोक मांहि, अति जैन धुरंधर सो सुनांहि।
जो दर्श-प्रतिज्ञा लई बाल, मुनिराज सीख दीनी जु हाल॥
गजमोती चढावे जबै लाय, तब वह भोजन करिहै बनाय।
ताके पूरब विधि उदय आय, ताको पति घरतें दियो काढ॥

परन्तु किसी पूर्व कर्म के उदय से उसके पति को घर से निकाल दिया है; वह हस्तिनापुर गया और वहाँ से रत्नपुर गया है। उसकी पतिव्रता नारी ने भी उसका साथ नहीं छोड़ा है, वे दोनों अभी रत्नपुर के बगीचे में बैठे हैं, उनके पास कोई साधन नहीं है। उनके पास गजमोती कहाँ है कि जिन्हें लेकर भगवान के दर्शन करे! उसे अन्न ग्रहण किये हुए आज सात दिन व्यतीत हुए हैं। उसके पति को तो खबर भी नहीं है कि मनोवती भोजन करती है या नहीं? उस नारी के प्राण कण्ठगत हो गये हैं तो भी वह धीरज का परित्याग नहीं करती है। प्रतिज्ञा से विचलित नहीं होती है; प्राण जाए तो भले जाए परन्तु जिनदर्शन की उत्तम प्रतिज्ञा को वह छोड़ती नहीं है। यदि इसी तरह उसके प्राण छूट जाएँगे तो लोगों को धर्म की श्रद्धा कम हो जाएगी और फिर कोई प्रतिज्ञा नहीं करेगा; इसलिए जिनधर्म की प्रभावना

में अभिवृद्धि हो, यह प्रयत्न हमें करना चाहिए—इस प्रकार इन्द्र ने कहा। तत्पश्चात् एक देव को बुलाकर हरि ने उसे हुक्म किया कि तुम तुरन्त मध्यलोक में जाकर उस पुण्यात्मा को जिनदेव के दर्शन कराओ और उसकी प्रतिज्ञा पूर्ण करो। मध्यलोक में जहाँ वह विराजमान है, वहाँ एक उत्तम जिनमन्दिर की रचना करो और उसमें रत्नमय जिनबिम्बों की स्थापना करो तथा उनकी पूजा के लिये मनोवती को गजमोती उपलब्ध कराओ।

इन्द्र की आज्ञा अनुसार वह देव एक क्षणमात्र भी विलम्ब किये बिना रत्नपुर के बगीचे में आ पहुँचा और जहाँ मनोवती बैठी हुई थी, वहाँ पृथ्वी फाड़कर विक्रिया द्वारा एक अत्यन्त भव्य जिनालय की रचना कर दी और जगमगाहट करता हुआ रत्नमय जिनबिम्ब भी उसमें स्थापित कर दिया। अहा! उस दैवीय शोभा की क्या बात!! बगल में गजमोती के ढ़ेर शोभित हो रहे थे। इस प्रकार जिनमन्दिर की रचना करके उस पर एक शिला का ढक्कन लगा दिया। मनोवती का पैर उस ढक्कन शिला के साथ टकराया और हाथ द्वारा शिला को दूर किया तो वहाँ उसने जगमगाते हुए दीपक समान जिनमन्दिर देखा... ऐसा अद्भुत जिनमन्दिर देखते ही उसे अपार आनन्द हुआ... मानो नवनिधान प्राप्त हुए हैं!

जिनराज भवन देखो जु सार, मन में आनन्द भयो अपार।
कैसे अब मन में दिसो सोय, मानों नवनिधि पुन आय होय॥

अहा! पुण्ययोग एक क्षण में कैसा परिवर्तन कर डालता है! पृथ्वी में जिनमन्दिर देखते ही उसने आश्चर्यपूर्वक मन्दिर में प्रवेश किया और अन्दर जाकर विचार करने लगी कि तनशुद्धि के लिये पानी कहाँ होगा, तभी बगल में स्वच्छ पानी से भरपूर कंचन कलश

देखा। उसके द्वारा स्नान करके अत्यन्त भक्तिपूर्वक जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करने चल दी... आज उसकी उमंग का पार नहीं था... तभी उसे भावना जागृत हुई कि अरे, गजमोती होवे तो उनके द्वारा भगवान की पूजा करूँ, तभी दायें ओर नजर करने पर जगमगाहट करते हुए गजमोतियों का पुंज देखा। उसने गजमोती हाथ में लेकर आनन्दपूर्वक जिनेन्द्र भगवान की पूजा की।

गजमुक्ता चोखे बहुत अनोखे, लख निरदोखे पुंज धरूँ,
जिनपूज रचाऊँ, हर्ष बढ़ाऊँ, मंगल गाऊँ, भक्ति करूँ।

इस प्रकार मन-वचन-काया की शुद्धिपूर्वक अत्यन्त भाव से पूजन की। जिनचन्द्र के दर्शन द्वारा उसका हृदय कमल खिल उठा और भक्तिपूर्वक अनेक प्रकार से स्तुति करने लगी।

तुम धन्य जिनेश्वर देव सार, तुमरे दर्शन मो मिले सार।
भवभव मांगूँ मैं जो यही, जिनराजदर्शन मिलवें सही।

प्रभो! इस जगत में एक आपका ही शरण है। भव-भव में मुझे सदा आपके दर्शन मिला करें, इस प्रकार प्रार्थना करके जहाँ वह मन्दिर से बाहर पैर रखती है, वहाँ तो उसने, अपने पैर के निकट उत्तम मोती की एक जोड़ी देखी। नर-मादा के युगल मोती उसके लिये देव ने वहाँ रखे थे। उन देव निर्मित रत्नों को लेकर मनोवती जिनभवन

के ऊपर आयी और बगीचे में बैठे हुए अपने पति को कहा— स्वामीनाथ! मुझे भूख लगी है, इसलिए नगरी में जाकर भोजन सामग्री ले आओ। कुमार सामग्री ले आया और भोजन बनाकर आज आठवें दिन मनोवती ने पारणा किया।

अष्टम दिन भोजन करो सोइ, जिनदर्श सुफल लीनों सु जोइ।
ता धन्य जन्म अवतार सोय, जा सम तिय नाहीं और कोय॥
देखो दर्शन फल अबै सार, कैसे तत्क्षण फल मिलो लार।
तातैं नरनारि सुनो जु सोय, जिनदर्श प्रतिज्ञा करो लोय॥

इस प्रकार मनोवती को जिनदर्शन का उत्तम फल प्राप्त हुआ। जिनदर्शन की अद्‌भुत महिमा जानकर प्रत्येक नर–नारी को प्रतिदिन जिनेन्द्र भगवान के दर्शन अवश्य करना चाहिए।

इस प्रकार मनोवती प्रतिदिन आनन्दपूर्वक जिनेन्द्र भगवान के दर्शन–पूजन करती है। पाठकों! यह मनोवती पूजा करती है, तब तक हम हस्तिनापुर होकर आते हैं।

★ ★ ★

हस्तिनापुर नगरी में प्रातःकाल होते ही सेठ का सारा परिवार जागृत हो गया किन्तु पुत्री और दामाद दिखायी नहीं दिये। उनके शयनकक्ष में जाकर खोज की तो पलंग पर गहने पड़े हुए दिखायी दिये, किन्तु पुत्री और दामाद को नहीं देखा गया। इससे पूरे परिवार में कोलाहल मच गया। माता रुदन करने लगी, तब सेठ ने विचार करके सबको धैर्य प्रदान करते हुए कहा कि निश्चित ही किसी ने कुँवर को अपमानजनक बात कही होगी, इसलिए पुत्री सहित वह यहाँ से चला गया है। हम चारों ओर गुप्तचर भेजकर उनकी खोज

करायेंगे। इस प्रकार पुत्री–दामाद के अचानक चले जाने से परिवार में उदासीनता हो गयी है।

★ ★ ★

रत्न गुम!! राजकुमारी के साथ विवाह

अब अपनी कथा वापिस रत्नपुर आती है। रत्नपुर के बगीचे में मनोवती अपने पति से कहती है कि—हे नाथ! चार दिन से तो आप प्रतिदिन नगरी में जाते हैं किन्तु कुछ उद्यम–धन्धा नहीं करते तो इसका क्या कारण है? कृपया मुझे बतलाये।

कुँवर ने कहा—देवी! जहाँ मेरे अशुभकर्मों का उदय हो, वहाँ कौन सहायभूत होगा? नगर में कोई ऐसा नहीं कहता कि हमसे इतना धन लेकर तुम व्यापार करो, यदि मेरे शुभ का उदय होता तो पिताजी मुझे घर से क्यों निकालते? अभी उदय ऐसा है, इसलिए धैर्य धारण करना चाहिए।

मनोवती ने कहा—मैंने हस्तिनापुर में ही रहने के लिये बहुत कहा था किन्तु आपने मान्य नहीं किया और भाग्य के भरोसे यहाँ आ गये। मैं जानती हूँ कि आपसे कुछ मेहनत नहीं हो सकती। परन्तु अब आप मन में से समस्त चिन्ताओं का परित्याग करके, जैसा मैं कहती हूँ वैसा करो। ऐसा कहकर नर–मादा की जोड़ी के दो दैवीय रत्न थे, उसमें से एक रत्न दिया और कहा कि आप राजदरबार में जाकर यह रत्न राजा को भेंट करो। यह रत्न दैवीय है और अपने पास जो दो रत्न हैं, उनमें यह नर रत्न है और दूसरा मादा रत्न अपने पास रखा है। इन रत्नों का ऐसा ही स्वभाव है कि मध्यरात्रि में बिछुड़े नहीं रहते। मध्यरात्रि होते ही यह रत्न चाहे जहाँ हो, वहाँ से उड़कर दूसरे रत्न के पास पहुँच जाता है। आप यह नर रत्न ले जाकर राजा

को भेंट प्रदान करें और बाद में क्या बनता है, वह देखें। राजदरबार में जाने पर दरबान आपको रोके तो उसे एक दीनार (चाँदी का सिक्का) दे देना।

कुँवरजी तो रत्न लेकर राजदरबार की ओर चल दिये, बीच में दरबान को दीनार दे दिया और राजा के निकट जाकर बहुमानपूर्वक अमूल्य रत्न भेंट किया। ऐसा दैवीय रत्न देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसने कुँवर का विशिष्ट आदर-सत्कार करते हुए कहा कि—जगत में वह जवेरी धन्य है जो ऐसे कीमती रत्न लाता है!

तत्पश्चात् राजा ने कुमार से पूछा—आप कहाँ ठहरे हैं?

कुमार ने कहा—नगर के बाहर बगीचे में रह रहे हैं।

राजा ने तुरन्त आदेश किया कि आप नगरी में आकर रहें, तदर्थ उन्हें एक विशेष हवेली प्रदान कर दी। कुमार ने राजदरबार में से बगीचे में आकर मनोवती को समस्त वृत्तान्त कह दिया। इस ओर राजा ने भण्डारी को बुलाकर कीमती रत्न उसे सौंप दिया और होशियार से सम्हालने की आज्ञा प्रदान की। भण्डारी ने वह मोती सुन्दर डिब्बी में रखकर भण्डार में रख दिया और मजबूत ताला लगा दिया।

परन्तु....

जहाँ मध्यरात्रि हुई, तभी वह मोती डिब्बे में से उड़ गया और मनोवती के पास जो दूसरा मोती था, उसके साथ जाकर रहा। प्रातः काल होने पर वह मोती लेकर मनोवती ने पुनः कुँवर को दिया और राजदरबार में जाकर भेंट प्रदान करने को कहा। कुँवरजी तो वह मोती लेकर फिर से राजदरबार में चल दिये। अब उन्हें कोई

रोकनेवाला नहीं था। राजा के निकट जाकर मोती भेंट में प्रदान किया। पहले जैसा ही उत्तम मोती देखकर राजा प्रसन्न हुआ और कहा—वाह, मोती की सुन्दर जोड़ी मिल गयी। ऐसा कहकर पहले के मोती के साथ इस मोती की तुलना करने के लिये भण्डारी से वह मोती मँगवाया। भण्डारी ने खजाने में जाकर देखा तो मोती वहाँ नहीं था। अरे, मोती गुम!! अत्यन्त सावधानी से पहरेदारों के बीच रखा होने पर भी मोती गुम हुआ, इससे भण्डारी घबरा गया, उसका मुख उतर गया और वह भय से थरथर काँपने लगा। राज्यसभा में आकर उसने कहा—महाराज! कोई चोर महल में आकर वह मोती चुरा ले गया है।

राजा को उसकी बात पर विश्वास नहीं हुआ क्योंकि घने पहरे के बीच राजमहल में आकर कोई मोती चुरा सके, यह असम्भव था। इसलिए राजा ने कहा—भण्डारीजी! दूसरा तो कोई चोर महल में आया नहीं, परन्तु यह महामूल्यवान मोती आपने ही चुराया है—ऐसा कहकर भण्डारी को सूली पर चढ़ा देने का आदेश कर दिया।

यह प्रसंग देखकर तुरन्त कुँवर ने कहा—महाराज! इसकी भूलचूक क्षमा करें। मैं आपको इसकी जोड़ी का दूसरा रत्न लाकर दूँगा। इस प्रकार कुमार के कहने से राजा ने भण्डारी को अभयदान दे दिया। इस कारण सारी सभा कुँवर को धन्य-धन्य कहने लगी। कुँवर ने आकर मनोवती से समस्त घटनाक्रम कह सुनाया और दूसरा मोती देने के लिये कहा। किन्तु मनोवती ने कहा कि कल इसका उपाय करूँगी।

इस ओर राजा ने वह मोती पुनः भण्डारी को दिया और अत्यन्त होशियारी पूर्वक सम्हालने को कहा। भण्डारी ने डिब्बे में रखकर

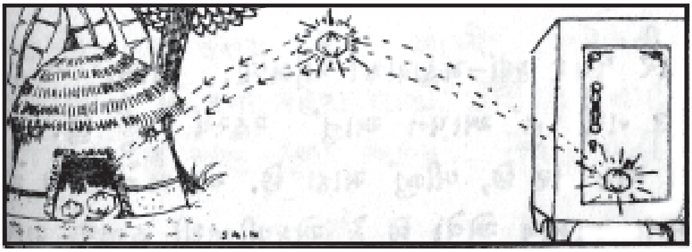

ताला लगाकर, पहरा बैठा दिया परन्तु जहाँ मध्यरात्रि हुई, वहाँ पहले की भाँति सरसराहट करता हुआ वह मोती उड़ गया और मनोवती के पास वाले दूसरे मोती के निकट आ गया।

★ ★ ★

प्रात:काल हुआ... भक्तिभाव से जिनेन्द्र भगवान के दर्शन-पूजन करने के बाद बुधसेन कुमार राजदरबार में जाने को तैयार हुआ, तब मनोवती ने नर और मादा दोनों मोती की जोड़ी उसे दे दी और उसका रहस्य भी समझा दिया। कुँवर ने राजदरबार में जाकर प्रथम एक मोती राजा को भेंट दिया। कल के मोती की जोड़ी का दूसरा मोती मिल गया—ऐसा समझकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और पहले का मोती लाने के लिये भण्डारी को हुक्म किया। भण्डारी ने जाकर डिब्बे में देखा तो मोती गुम! अर..र..! भण्डारी तो थरथर कांपने लगा कि अवश्य अब मेरे प्राण चले जाएँगे। उसने राजा के पास आकर कहा—महाराज! आज भी कोई चोर आकर वह मोती चुरा ले गया है।

राजा तो यह सुनते ही एकदम क्रोधित हो गया। इतना सख्त पहरा होने पर भी मोती कौन चुरा सकता है? निश्चित ही यह कार्य भण्डारी का लगता है, ऐसा समझकर राजा ने उसका सब धन लूटकर सूली पर चढ़ा देने का हुक्म कर दिया।

तब कुमार ने कहा—महाराज सुनो! इसमें भण्डारी की कोई भूल नहीं है, मैं आपको इसका रहस्य कहता हूँ। इन दो मोतियों में एक नर है, दूसरा मादा है। ये दोनों रत्न दैवमय है, इनका ऐसा स्वभाव है कि एक-दूसरे से हजारों कोस दूर होने पर भी मध्यरात्रि में उड़कर यह नर रत्न, मादा के पास पहुँच जाता है। इस कारण राज्यभण्डार में से उड़कर यह रत्न हमारे पास वाले मादा रत्न के पास आ जाता था, परन्तु अब ये दोनों रत्न आप साथ में रखो, जिससे ये आपके भण्डार में रहेंगे। इतना कहकर कुँवर ने दोनों रत्न राजा को अर्पण कर दिये।

दैवीय रत्नों का यह रहस्य जानकर राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ और मन में विचार करने लगा कि इस कुँवर को मैं क्या इनाम दूँ! लक्ष्मी द्वारा तो इन रत्नों का मूल्य हो नहीं सकता। यह कुमार सद्गुणी है, इसलिए अपनी पुत्री का विवाह इसके साथ कर देना उचित प्रतीत होता है। ऐसा विचार कर राजा ने प्रीतिपूर्वक कुँवर से यह बात कही। कुमार की सहमति पाकर तुरन्त पण्डित को बुलाया गया और कुँवर का टीका कर दिया।

बुधसेनकुमार ने घर आकर मनोवती को इस वृत्तान्त से अवगत करा दिया, तब सुन्दरी ने—मनोवती ने कहा—स्वामीनाथ! आप राज दामाद हुए, यह तो अच्छा है किन्तु मुझे विस्मृत मत कर देना।

प्रत्युत्तर में कुँवर ने कहा—देवी! यह सब तुम्हारी दर्शन प्रतिज्ञा का प्रताप है। मैं तुम्हें कभी विस्मृत नहीं कर सकता।

शुभ मुहूर्त में राजा ने मण्डप सजाया और धूमधाम से अपनी पुत्री का विवाह कुमार बुधसेन के साथ कर दिया। विवाह के समय कुँवर को दहेज में हाथी, घोड़ा, स्वर्ण के कलश और गजमोती के

हार उपरान्त अपने राज्य का चौथा भाग प्रदान कर दिया तथा रहने के लिये उत्तम महल भी दे दिया। मनोवती भी सुखपूर्वक दूसरे महल में रहने लगी। उसकी दर्शन प्रतिज्ञा के पुण्य-प्रताप से तत्क्षण ऐसा फल प्राप्त हुआ। इसलिए यहाँ कवि कहता है कि—

तातें नरनार सुनीजे, नित दर्शप्रतिज्ञा कीजे।
जिनदर्श समान न कोई, यही सार जगत में होई

★ ★ ★

महान जिनमन्दिर का निर्माण

बगीचे में देव ने जो जिनालय रचना की थी, उसका कार्य पूर्ण होने पर उसे समेट लिया और वह अपने स्वर्ग में चला गया। इस ओर राज्यलक्ष्मी प्राप्त करके कुँवर भोगविलास में पड़ गया और मनोवती के निकट आना भूल गया। इस प्रकार बहुत दिन व्यतीत हो गये, तब एक बार कुमार मनोवती के पास आया। मनोवती ने उसका स्वागत करते हुए कहा, स्वामी! सुनो, घर में से पिताजी ने निकाल दिया था, तब आप हस्तिनापुर आये थे, तभी से मैंने भी आपके साथ ही घर छोड़ा है और हम यहाँ आये हैं और जिनमन्दिर के प्रताप से देव ने सहायता की है, इसलिए आज इस वैभव को प्राप्त हुए हैं, यह सब बात आप भूल गये हैं। मुझे अन्य तो कोई चिन्ता नहीं है परन्तु एक विशेष बात आपसे कहती हूँ कि जिस प्रकार मुझे भूल गये हैं, उसी प्रकार सुखकर धर्म को मत भूल जाना।

जैसी मेरी खबर अब, तुम भूले भरतार।
तैसे धर्म न भूलियो, सो जानो सुखकार॥
जो भूले तो बहु दुःख होय।
सो मत भूलो अब तुम सोय॥

धर्म को भूलने से जीव संसार में बहुत दुःख प्राप्त करता है, इसलिए हे स्वामी ! मुझे तो भूल गये किन्तु धर्म को कभी मत भूल जाना।

मनोवती की यह बात सुनकर कुमार लज्जावश नीचे देखने लगा। वह थोड़ी देर तो कुछ नहीं बोल सका। पश्चात् उसने कहा—हे देवी ! मेरी भूल को क्षमा करो। धर्म का सच्चा उपकार है, वह मैं कभी नहीं भूलूँगा। अब तुम्हारी जो आज्ञा हो, मैं उसे शीघ्र पूर्ण करने के लिये तत्पर हूँ। अतः अपनी मनोभावनाओं को व्यक्त करो।

कुमार की बात सुनकर मनोवती ने कहा—स्वामी ! इस जगत में धर्म ही सबसे महान है, वही दुःख-दरिद्र का नाश करनेवाला है, स्वर्ग-मोक्ष की सुख-सम्पत्ति भी उसी से प्राप्त होती है। इसलिए हे नाथ! आप एक विशाल जिनमन्दिर का निर्माण करो... इस धर्मकार्य में विलम्ब मत करो।

धर्म बड़ो संसार मंझार, दुःखदारिद्र विनाशनहार।
धर्महीतें सुखसम्पत्ति होइ, स्वर्ग मुक्तिपद पावे सोइ।
तातें एक करो भरतार, जिनमन्दिर बनवाओ सार।
इह भव तो तुमरो जस होय, परभव को सुखदायक सोय।
धर्मकाज में मेरे कन्त, ढील न कीजे करहु तुरन्त॥

मनोवती की यह बात सुनकर कुँवर बहुत प्रसन्न हुआ और तुरन्त ही राजदरबार में आकर उसने कहा—महाराज ! यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं आपके राज्य में एक विशाल जिनमन्दिर बनाना चाहता हूँ।

राजा ने कहा—हे वत्स ! यह तुमने बहुत उत्तम बात विचारी है।

तुम प्रसन्नता से अपनी इच्छानुसार कहीं भी जिनमन्दिर बनाओ और महान उत्सव करो।

राजा की आज्ञा प्राप्त कर कुमार तुरन्त घर आया। उसने महान विद्वानों को बुलाया और शुभमुहूर्त में चारों ओर एक कोस जमीन में मनोवती के हाथ से उत्तम जिनमन्दिर का मुहूर्त कराया। आज मनोवती के हर्ष का पार नहीं था। कुमार ने खजाना खोल दिया और उदार हृदय से धन खर्च करने लगा। कार्य की देखरेख के लिये एक मुनीम की नियुक्ति कर दी गयी और उससे कहा कि देश-परदेश में जो कोई कारीगर अथवा मजदूर आवे, उसे काम देना और प्रतिदिन दो पैसे देना। किसी भी व्यक्ति को निकालना नहीं। देश-परदेश में यह समाचार पहुँच जाने से हजारों लोग कार्य के लिये आने लगे। इस प्रकार यहाँ रत्नपुरी में तो जिनमन्दिर का काम उन्नत गति से चल रहा है, तब बल्लभीपुर में जो घटनाचक्र घटित हुआ, उसके परिज्ञान हेतु अपनी कथा को बल्लभीपुर ले चलते हैं।

★ ★ ★

हेमदत्त सेठ का हाल

कुँवर के पिता सेठ हेमदत्त ने महासुखकर जिनदर्शन की निन्दा की थी, इसलिए उन्होंने महापाप का बन्ध किया और मात्र छह महीने में तो उनका समस्त धन पलायन कर गया। छप्पन करोड़ मोहरों में से उनके भण्डार में एक भी मोहर नहीं रही। गहने, घर, वस्त्र तथा बर्तन इत्यादि सब बेचकर खा लिया; अधिक क्या कहना ? अब उन्हें खाने का भी संकट आ पड़ा। सिर पर लकड़ियों का भार लेकर बेचने निकले, तो भी पेट नहीं भरता था। ऐसी हालत होने पर वे परदेश के लिये निकल पड़े और भीख माँगने लगे, बहुत

दुःखी हुए। अपने द्वारा किये गये पाप का फल जीव को भोगना पड़ता है, इसलिए हे जीव! तू देव–गुरु–धर्म की असातना कभी मत करना। सदा बहुमानपूर्वक देव–गुरु–धर्म की आराधना करना। अपने किये हुए पाप के उदय से प्रतिकूलता आयी, उसे कौन मिटा सकता है! जो ऊँचे हाथी के हौदे पर बैठते थे अथवा रथ में निकलते थे, राज दरबार में जिनका आदर था, आज वे नंगे पैर भीख माँगते हुए घूम रहे हैं और उन्हें कोई पूछता भी नहीं। माता–पिता, छह भाई तथा छह भाभियाँ इस प्रकार चौदह व्यक्ति काम खोजते हुए घूम रहे हैं और दुःख से धैर्य गँवा रहे हैं। छप्पन करोड़ मोहर के स्वामी की ऐसी दशा हो गयी! यह देखकर, हे जीवो! तुम लक्ष्मी का गर्व मत करो... लक्ष्मी को प्राप्त करके भी जिनदेव की भक्ति में तत्पर रहो।

हेमदत्त सेठ इत्यादि सब भटकते–भटकते बहुत दिनों में रत्नपुर में आ पहुँचे। उन्हें देखकर नगर के एक सज्जन ने कहा—आप किसी उत्तम कुल के लगते हो; आप भीख माँगते हो, यह शोभा नहीं देता। यदि आपसे मजदूरी का काम हो सकता हो तो इस नगरी के राजा के दामाद विशाल जिनमन्दिर बना रहे हैं और उसमें हजारों लोगों को काम में लगाया है, वे रोजाना दो पैसे देते हैं और किसी को इनकार भी नहीं करते, इसलिए आप उस काम में लग जाओ।

तब सेठ ने कहा—भाई! हम तो अनजान हैं, यहाँ कोई हमें पहिचानता नहीं है, इसलिए आप हमें उस काम में लगा दो... हमारी इतनी सहायता करो।

यह सुनकर वह सज्जन उन चौदह जनों को लेकर कुँवर के दरबार में आया। राजदरबार जैसे दरबार में कुँवर बैठा हुआ था। गजमोती के हार, कुण्डल इत्यादि श्रृंगार से वह सुशोभित था। उससे

हाथ जोड़कर उस सज्जन ने कहा—कुँवरजी ! मेरी प्रार्थना सुनिये। ये चौदह परदेशी व्यक्ति उत्तम कुल के हैं, इन्हें जिनमन्दिर के काम में लगाने की कृपा करे।

यह सुनकर कुँवर बुधसेन ने जहाँ नजर ऊँची की, वहाँ अपने माता-पिता, भाई-भाभियों को देखा और वह विचार करने लगा कि अरे ! इस जगत में लक्ष्मी अस्थिर है, उसमें कुछ सारपना नहीं है। उस लक्ष्मी को धिक्कार है कि जिसके लिये मेरे बांधवों ने मुझे घर से निकाल दिया था ! अब उस लक्ष्मी का नाश होने पर वे भीख माँगकर खा रहे हैं। छप्पन करोड़ दीनार में से एक भी नहीं रही— ऐसा विचारकर कुँवर ने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा—आप चिन्ता न करो, मैं अभी आपको काम में लगा देता हूँ—ऐसा कहकर कुँवर महल में मनोवती के पास गया। (विदित हो कि कुँवर तो अपने माता-पिता को पहिचान गया है किन्तु माता-पिता इत्यादि कोई भी उसे नहीं पहिचान सके।)

महल में आकर कुँवर ने मनोवती से कहा—हे देवी ! माता-पिता और भाई-भौजाई, ये सब यहाँ आये हैं। अब उनके पास कुछ नहीं रहा है और भीख माँगते फिर रहे हैं। उन्होंने मुझे अभिमानवश घर से निकाल दिया था, अब मेरा अवसर आया है। वे मेरे पास मजदूरी करने आये हैं, इसलिए अब उनसे बहुत मजदूरी कराकर अपने अपमान का बदला लूँगा।

कुँवर की बात सुनकर धर्मधुरन्धर उस नारी ने उसे उलहाना देते हुए कहा—अरे ! माता-पिता के लिये ऐसे वचनों का उच्चारण करते हो, यह आपको शोभा नहीं देता। जिसके गर्भ में आप अवतरित हुए और जिन्होंने आपको बड़ा किया है, उन माता-पिता

के उपकार का बदला करोड़ों उपायों से भी चुकाया नहीं जा सकता। आपको अपने पूर्व कर्म के उदय से दु:ख प्राप्त हुआ था, उसमें दूसरे का क्या दोष है ? इसलिए किसी को दोष नहीं देना चाहिए और इन बन्धुजनों तथा माता-पिता के साथ प्रेम से मिलना चाहिए। उन्हें धन देकर उनका यथासम्भव उपकार करना चाहिए। आप उनके अवगुण नहीं देखकर गुण देखें, यही मेरा निवेदन है।

कुँवर ने कहा—हे देवी ! सुनो, उन्होंने अभिमान से मुझे घर से निकाल दिया था, इसलिए एक बार तो उनसे मजदूरी कराऊँगा, तत्पश्चात् तुम्हारे कहे अनुसार सब व्यवस्था कर दूँगा।

मनोवती ने समझाते हुए कहा—हे स्वामी ! अब आप राज्याभिमान में डूब गये हो, इसलिए चेतनाहीन हो गये हो। देखो, यह छप्पन करोड़ दीनार के स्वामी आज भीख माँग रहे हैं। इसलिए आप लक्ष्मी का गर्व मत करो। लक्ष्मी तो परछाईं की तरह है। वह किसी घर में कायम नहीं रहती। इस प्रकार मनोवती के द्वारा समझाये जाने पर भी कुँवर ने उसकी बात को स्वीकार नहीं किया और कहा—पहले सबसे मजदूरी कराकर फिर पहिचान करूँगा। तब मनोवती ने कहा—स्वामी ! अब मैं आपसे कुछ नहीं कहती परन्तु मेरा इतना कहना अवश्य स्वीकार करें कि माता-पिता को एक ओर बैठाकर रखना, उनसे मेहनत नहीं कराना। कुँवर ने यह बात स्वीकार कर ली और वह मन्दिर की ओर गया। वहाँ मुनीम को बुलाकर कहा इन बारह लोगों को मजदूरी के काम में लगाओ और इनसे सवेरे से शाम तक भारी काम कराओ। बाकी के ये दो वृद्ध हैं, इनसे कुछ मेहनत नहीं हो सकती; इसलिए इन दोनों को ऐसे के ऐसे बैठे रहने देना। इस प्रकार हुक्म करके कुँवर चला गया।

इस ओर मनोवती ने सबकी खोज कराकर मुनीम को बुलाकर एकान्त में सब हकीकत से अवगत करा दिया और कहा— मुनीमजी ! ये तो कुँवरजी के माता-पिता और भाई ही हैं, ये उत्तम कुल के हैं। इन्होंने ऐसा कार्य कभी नहीं किया है, अभी पापकर्म के उदय से वे यह मजदूरी करने को तैयार हुए हैं। कुँवर तो राजवैभव के मद में सब भूल गये हैं परन्तु आप मेरी आज्ञा मानकर इन सबसे कम काम कराना। यह सुनकर मुनीम ने उस आज्ञा का स्वीकार किया और मन ही मन उसे धन्यवाद देने लगा कि ऐसी महिलाएँ धन्य हैं... और फिर उसने सबको योग्य कार्य सौंप दिया।

★ ★ ★

परिचय और परिवार मिलन

इस प्रकार सब परिवार मजदूरी में लग गया है। भूतकाल को याद कर-करके वे सब दुःखी होते हैं। अरे ! हमने लक्ष्मी तो गँवा दी किन्तु छोटा भाई भी गँवा दिया। इस प्रकार पश्चाताप से सभी दुःखी होते हैं और मजदूरी करके अपने दिन व्यतीत कर रहे हैं। ऐसा करते-करते कितने ही दिन व्यतीत होने के बाद एक दिन सुन्दर (मनोवती) ने कुँवर से कहा—हे स्वामी ! मुझे इस महल में अकेलापन लगता है, मुझे किसी दूसरी सखी की आवश्यकता है। इसलिए अपनी माताजी को महल में बुला लो। यह सुनकर कुँवर ने माता को महल में भेज दिया।

मनोवती माताजी से महल का कोई काम नहीं कराती थी, उसे अपने साथ उत्तम स्वादिष्ट भोजन कराती है और उसके साथ पकवान इत्यादि भेजकर पूरे परिवार को भोजन कराती है। इस प्रकार कुँवर से गुप्तरूप से परिवारीजनों का पालन-पोषण करती है।

एक दिन मनोवती ने कहा—माता! आप मेरे सिर के केश गूँथ दो। तब उस वृद्ध माता ने संकोच से कहा कि आप तो कोटि ध्वज की वधु हो और हम तो अत्यन्त दरिद्री हैं, इसलिए आपके मस्तक को हाथ लगाते हुए मुझे संकोच होता है।

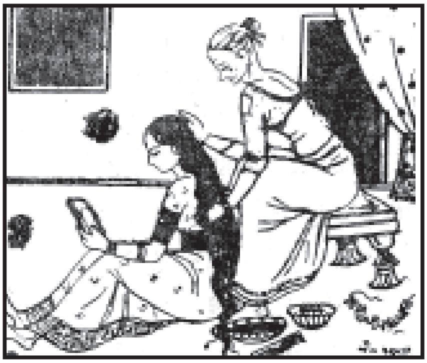

वृद्ध माता की यह बात सुनते ही मनोवती की आँख में पानी उभर आया—वह विचार करने लगी कि अरे, लक्ष्मी इस संसार में कैसी बुरी चीज़ है! यह प्रत्यक्ष मेरी सासु माँ है और मैं इनकी पुत्रवधु हूँ परन्तु इनकी सम्पत्ति नष्ट हो जाने से वह मेरे समीप भी नहीं आ सकती। तत्पश्चात् उसने माता से कहा कि आप चिन्ता न करो और मेरा सिर गूँथ दो।

तब वह माता नजदीक आयी और बाल गूँथने लगी। उसके सिर की रेशमी डोरी खोली, उसके सिर के चिह्न पर नजर पड़ते ही वृद्ध माता का हृदय एकदम भर आया, वह आँसू गिरा-गिराकर बहुत रुदन करने लगी।

तब सुन्दरी ने कहा—माता! आप इतनी अधिक रो रही हैं, इसका क्या कारण है?

वृद्ध माता ने कहा—बहिन! तुम्हारा मस्तक देखते ही मुझे मेरी अतीत की बात स्मरण हो आयी परन्तु वह बात कहूँ तो कोई सत्य भी नहीं मानेगा।

सुन्दरी ने कहा—आप भय का परित्याग कर, जो बात हो वह मुझसे कहें।

वृद्ध माता हाथ जोड़कर कहने लगी—देवी, सुनो! हम पहले ऐसे रंक नहीं थे, हम बल्लभीपुर के महान जवेरी थे और हमारे घर में छप्पन करोड़ दीनार थी। हमारी हवेली पर छप्पन तो ध्वजाएँ फहराती थीं और देश-परदेश में हमारी पेढी चलती थी। मेरे सात पुत्र हैं, उनमें सबसे छोटा बुधसेन था। उसका विवाह हस्तिनापुर में किया था। उसकी पत्नी अत्यन्त शीलवती थी, सुखकर थी; उसने मुनिराज से ऐसी दर्शन प्रतिज्ञा अंगीकार की थी कि गजमोती चढ़ाकर जिनदेव का पूजन करने के पश्चात् ही भोजन करूँगी, परन्तु पूर्व कर्म के पाप के उदय से बुधसेन कुँवर को हमने घर में से निकाल दिया, पुत्रवधू भी उसके साथ ही गयी। उस पुत्र और पुत्रवधू का कहीं पता नहीं लगा।

हमने जब से घर में जिनदर्शन की निन्दा की और पुत्रवधू को घर में से निकाल दिया, तब से हमारी लक्ष्मी नष्ट होने लगी और आज हमारा यह हाल हुआ है। मेरी पुत्रवधू के मस्तक में आपके जैसा ही चिह्न था, इसलिए यह चिह्न देखते ही पुत्रवधू के स्मरण से मेरा हृदय भर आया है।

माताजी की यह बात सुनकर मनोवती को मन में तो कुछ क्रोध नहीं आया परन्तु बाहर में उसने यह कहा—क्या अब मुझे तुम्हारी पुत्रवधू बनाना है। ऐसा कहकर उसे महल में से विदा कर दिया।

माता वहाँ से आकर अपने छह पुत्रों के निकट गयी और महल में बनी हुई समस्त वार्ता कह सुनायी, तब पुत्र उसका अपमान करके कहने लगे—बिना विचारे तुमने यह क्या किया? तुम महल में

यद्वा–तद्वा क्या कह आयी हो ? यहाँ कौन तुम्हारा पुत्र और कहाँ तुम्हार पुत्रवधू ? वे यहाँ कहाँ से होंगे ? तुमने अपनी पहिचान क्यों करा दी ? ऐसा कहकर उसे उलहाना देने लगे और खाने–पीने को कुछ दिये बिना उसे घर से निकाल दिया, इसलिए वह अत्यन्त दुःखी हुई।

सुन्दरी ने जब यह बात सुनी तो उसने तुरन्त अपने स्वामी को बुलाया और कहा—हे स्वामी ! यह बड़े भाई और भाभियाँ आपके माता–पिता समान हैं, वे अभी सिर पर भार उठाया करें और आप आँखों से देखते रहो, क्या इसमें आपको लज्जा नहीं आती ! अब उन पर बहुत आपदा बीत गयी है, इसलिए उन्हें महल में बुलाओ और साथ में रखो।

तब कुँवर ने कहा—उन्होंने अभिमान से मुझे घर से निकाल दिया था; इसलिए उनसे अभी बहुत मजदूरी कराऊँगा और बाद में पहिचान करूँगा।

सुन्दरी के द्वारा बहुत समझाये जाने पर भी जब कुँवर ने नहीं माना, तब अन्त में सुन्दरी ने स्पष्ट कहा—स्वामी, सुनो ! अब बड़े भाई–भाभियाँ मजदूरी करें, वह मुझसे तो देखा नहीं जा सकता। उन्हें बुलाने की इच्छा न हो तो आप अपने महल में बैठे रहना परन्तु मैं तो उन्हें यहाँ बुलाकर ही लाती हूँ और उन्हें धन, वस्त्र इत्यादि सौंप देती हूँ। क्या सब तुम्हारी ही इच्छानुसार होगा ? मेरा कुछ नहीं चलेगा ? यदि आप हठ करोगे तो मैं सबके बीच प्रसिद्ध कर दूँगी कि ये सब हमारे बड़े–कुटुम्बीजन हैं। उनसे कुँवर ने अभिमानवश मजदूरी करायी है—इस प्रकार लोगों में आपकी बहुत निन्दा होगी।

इस प्रकार रोषपूर्वक सुन्दरी ने कहा, तब कुँवर ने विचार किया

कि यह स्त्री अब रुष्ट हुई है, यदि इसके कहे अनुसार नहीं करूँगा तो यह समस्त वार्ता प्रसिद्ध कर देगी और मेरी बहुत निन्दा होगी। इस प्रकार विचार कर उसने सुन्दरी की बात मान ली और तुरन्त एक सेवक को बुलाकर उन चौदह परदेशी मनुष्यों को शीघ्र महल में बुला लाने के लिये भेज दिया।

सेवक ने वहाँ जाकर माता-पिता तथा भाई-भाभियों से कहा कि आप सबको इसी समय कुँवर साहब ने बुलाया है। यह सुनते ही सभी भय से काँपने लगे। हम सबको बुलाया है, अब कौन जाने हमारा क्या होगा? इस डर से काँपते-काँपते वे सब कुँवर के महल में आ पहुँचे।

उनके महल में पहुँचते ही कुँवर ने द्वार बन्द करा दिये। इससे वे सब और अधिक भयभीत होने लगे। भय से काँपते-काँपते थोड़ी देर में वे महल के चौक में पहुँच गये, वहाँ मनोवती सुन्दरी बैठी हुई थी।

माता-पिता के प्रति हाथ जोड़कर कुँवर ने कहा—

मैं हूँ वह पुत्र तिहारों, जाको दियों देश निकारो।
इतनी कहके सिर नायो, हिमदत्त ने कंठ लगायो॥

हे पिताजी! हे माताजी! आप सब भय त्यागकर मेरे सुखकर बात सुनो... मैं आपका वह पुत्र बुधसेन ही हूँ कि जिसे आपने घर से निकाल दिया था। इस प्रकार कहकर कुँवर ने माता-पिता को मस्तक झुकाकर नमस्कार किया, मनोवती ने भी सासु के चरण-स्पर्श कर नमस्कार किया।

हेमदत्त सेठ तो अत्यधिक हर्षित हुए और पुत्र को गले लगा

लिया। माता के हर्ष का तो कहना ही क्या! पुत्र को और पुत्रवधु को देखते ही वह तो हर्ष से उन्मत्त हो गयी। एक-दूसरे के मिलन से सबके आँसुओं की धारा बरसने लगी। बड़े भाईयों तथा भाभियों से भी कुँवर अत्यन्त हर्षपूर्वक मिले, तत्पश्चात् घर के भण्डार खोलकर अनेक प्रकार के वस्त्र, आभूषण निकाल कर सबको पहनाये। पूरे परिवार को आनन्दपूर्वक समझाया, हर्ष से सबके साथ बैठकर भोजन किया और अपने-अपने सुख-दुःख की बातें की। मनोवती की दर्शन प्रतिज्ञा की सबने प्रशंसा की।

थोड़े दिन पश्चात् कुमार ने बड़े बन्धुओं से कहा— भाई! आप मेरी बात सुनो। यहाँ से कितना ही द्रव्य लेकर आप देशान्तर जाओ और वहाँ व्यापार करो। वैभवसहित वापिस यहाँ रत्नपुरी पधारो और तब आपका प्रसिद्ध स्वागत करके मैं राजा इत्यादि के साथ पहिचान कराऊँगा, जिससे अपने कुल की उत्तम कीर्ति जगमगायेगी।

बुधसेन की यह बात सबको रुचिकर प्रतीत हुई और आनन्दपूर्वक सवारी सहित धन लेकर दूसरे नगर की ओर विदा हुए। थोड़े दिन पश्चात् कुँवर ने वहाँ से उन्हें लाने के लिये हाथी, रथ, घोड़े, पालकी इत्यादि अनेक ठाट-बाट भेज दिये। कोई हाथी पर तो कोई रथ में, कोई घोड़े के ऊपर तो कोई पालकी में; इस प्रकार धूमधाम से सभी रत्नपुरी आ पहुँचे। कुँवर ने राजा को समाचार भेज दिये कि मेरे बड़े भाई यहाँ आये हैं, यह सुनकर राजा ने तुरन्त नगर में ढिंढ़ोरा पिटवा दिया कि सभी प्रजाजन उनका स्वागत करें। प्रजाजन हर्षपूर्वक उनके स्वागत हेतु धूमधाम से चल दिये। राजा भी साथ में आये। हाथी, घोड़ा नौबत बाजा सहित सब बगीचे में आ पहुँचे और वहाँ कुँवर ने सभी स्वजनों के साथ मिलाप कराया।

कुँवर ने राजा को अपने भाईयों की पहिचान करायी। परस्पर मिलन से सबको अत्यन्त हर्ष हुआ। वहाँ से गाते-बाजते सवारी निकालकर राजा उन सबको अपने महल में लाया, सब का सम्मान करके उत्तम भोजन कराया और सबको हार पहनाये। तत्पश्चात् कुँवर के महल में जाकर उसकी रानी तथा मनोवती से सब मिले, एक-दूसरे को देखकर सबको हर्ष हुआ और यह सब प्रताप मनोवती की दर्शन प्रतिज्ञा का है, ऐसा कहकर सब जिनदर्शन की महिमा करने लगे।

देखो दर्शन फल तुरत सार, तातें सब सुनियो नरनार।
जिन दर्शन प्रतिज्ञा करो सोय, ताको फल कहत अंत न होय।

इह विधि सों परिवार सब, मिलो तहां जो आय।
धन्य धर्म जिनराज को, वह अब भयो सहाय॥

सबै सुनो नर नार, दर्श प्रतिज्ञा कीजिये।
भवभव सुखदातार, नरभव को फल लीजिये।

कथाकार बारम्बार भावपूर्वक कहते हैं कि हे जीवो! तुम जिनेन्द्र भगवान के दर्शन को महान सुखकर जानकर अवश्य दर्शन प्रतिज्ञा धारण करो। प्रत्येक जीव को जिनदेव के दर्शन अवश्य करना चाहिए, उसका फल महान है।

★ ★ ★

रत्नपुरी में जिनमन्दिर का प्रतिष्ठा महोत्सव

अब यहाँ रत्नपुरी में मनोवती की भावनानुसार अतिशय विशाल उन्नत सुन्दर जिनमन्दिर तैयार हो गया। उसकी शोभा की क्या बात! संगमरमर की सीढ़ियाँ थीं, बिल्लोरी पत्थर के स्तम्भ थे, कश्मीरी

कारीगरी की सुन्दर वेदी थी, जगह-जगह दर्पण लगे हुए थे, मोती की माला और तोरण झूलते थे, अनेक स्थलों में सोने-चाँदी की नक्काशी थी। मन्दिर के ऊपर बहुत ऊँचा शिखर था और उस पर स्वर्ण का कलश चमक रहा था। सबसे ऊँचे धर्मध्वजा लहरा रही थी। ऐसा भव्य जिनमन्दिर देखकर मनोवती के हर्ष का पार नहीं था। उसने कुँवर से कहा—स्वामी! सुन्दर जिनमन्दिर तैयार हो गया है, इसलिए अब प्रतिष्ठा में विलम्ब मत करो। बहुत ही उल्लास से जिनेन्द्र भगवान के पंच कल्याणक का महान उत्सव कराओ और देश-देश के यात्रियों को बुलाओ। जैनधर्म की महान प्रभावना करो। धर्म के ऐसे उत्तम कार्य में ढील करना उचित नहीं है, इसलिए यह कार्य तुरन्त करो।

यह सुनकर कुँवर शीघ्र ही राजदरबार में गया और कहा—महाराज! जिनेन्द्रदेव का भव्य मन्दिर तैयार हो गया है, अब आपकी आज्ञा से उसमें भगवान की प्रतिष्ठा का उत्सव करने की भावना है।

राजा ने यह सुनते ही हर्ष से कहा—आपका विचार बहुत ही उत्तम है। आप आनन्द से महान उत्सव करो और इस रत्नपुरी की शोभा बढ़ाओ। इसमें हमारे योग्य जो कोई कार्य हो, उसके लिये मैं सदैव उपस्थित हूँ। भगवान की प्रतिष्ठा के लिये राज्य के भण्डार खुले हैं। धन्य यह नगरी कि जहाँ मनोवती जैसे धर्मात्मा निवास करते हैं और जहाँ जिनेन्द्र भगवान के पंच कल्याणक का महोत्सव होगा।

प्रतिष्ठा उत्सव की जोरदार तैयारियाँ चलने लगीं। राजा ने नगर में ढिंढ़ोरा पीटकर समस्त प्रजा को हुक्म किया कि प्रतिष्ठा उत्सव में जो कोई यात्री आवे और उन्हें जिस किसी वस्तु की आवश्यकता

है, वह तत्काल देना चाहिए। जो वस्तु माँगे, वह देना है और उसकी जो कीमत हो, वह राज्य के भण्डार में से ले लेना है। यात्रियों से किसी को कोई कीमत माँगना नहीं है। किसी यात्री की कोई भूलचूक होवे तो उसे माफ करना है। यात्रियों की रक्षा के लिये उन्होंने सैन्य बल भी दे दिया। इस प्रकार कुँवर को सम्मान देकर, महोत्सव का उत्साह बतलाया। वास्तव में ऐसे धर्मप्रेमी नृपति को भी धन्य है।

इस प्रकार राजा की आज्ञा प्राप्त कर कुँवर घर आया और शीघ्र ही विद्वानों को बुलाया। प्रतिष्ठा का मंगल मुहूर्त निकलवाया और नगर में निमन्त्रण पत्रिका भेजकर पंचों को बुलाया। मालव और कुरजांगल, हस्तिनापुर, उज्जैन, अवंति, महाराष्ट्र, गुजरात, सौराष्ट्र, कौशल, केडिल, अंग और बंग, मगध और पटना, कश्मीर और काशी, मेरठ और त्रेयंग, बल्लभीपुर और दक्षिण देश—ऐसे सर्वत्र आमन्त्रण पत्रिका भेजकर साधर्मियों को आमन्त्रित किया। सभी स्थानों से हजारों-लाखों यात्री आने लगे। नगरी को शृंगार करके सर्वत्र तम्बू लगाये गये, ध्वजा पताका फहराने लगी। नौबत बाजा बजने लगे। अनेक देश के बड़े-बड़े श्रावकों ने आकर आनन्द में वृद्धि की; कितने ही हाथी, घोड़े, रथ आये; मनोवती ने भगवान की रथयात्रा के लिये सोने-चाँदी का एक अद्‌भुत रथ घुमाया... जिसमें जगह-जगह हीरा-मोती के तोरण झूल रहे थे और नीलमणि के छत्र शोभित थे। महोत्सव के लिये कुँवर ने भण्डार खुल्ले कर दिये और बहुत धन खर्च किया। जिनेन्द्र महिमा का ऐसा प्रभावशाली उत्सव देखकर नगरजन आश्चर्यचकित हो गये। सर्वत्र जिनधर्म की महिमा व्याप्त हो गयी। हजारों-लाखों जीवों ने बहुमान से जिनधर्म

अंगीकार किया, चारों ओर यात्रियों की भीड़ का तो पार नहीं था। यात्रियों का अनेक प्रकार से सम्मान करते हुए वात्सल्य प्रदर्शित किया गया।

इस प्रकार प्रतिष्ठा महोत्सव का आनन्दकारी मेला भर गया। जिनमन्दिर की शोभा कैसी थी—वह अब सुनो, बावन गज की वेदी पर सोने का हीरा जड़ित उत्तम सिंहासन था। चारों ओर मखमल इत्यादि के उत्तम चंदोवा बने हुए थे, मोती के मांडला बनाये गये थे और गजमोती का चौक पूरा गया। स्वर्ण के वेदी मण्डप पर बावन अंगुल की मोती की झालर लटकती थी और जगह-जगह हीरा-माणिक जड़े हुए थे।

ऐसे जिनमण्डप में पार्श्वनाथ प्रभु की रत्नमय जिनप्रतिमा स्थापित थी, वह प्रतिमा बहुत विशाल थी और चतुर्मुख थी। चारों ओर से उसकी पूजा होती थी। पूजन करनेवाले नर-नारियों के हाथ की अंगुलियों में रत्नजड़ित मुद्रा थी और गले में गजमोती के हार थे; सिर पर स्वर्ण मुकुट और कपाल में केसर का तिलक शोभित हो रहा था। ऐसे ठाट सहित इन्द्रध्वज महापूजन चलती थी।

चंवर से जिनप्रतिमा मनोहर लगती थी। छड़ीदार हाथ में स्वर्ण छड़ी लेकर खड़े थे। अनेक प्रकार के मंगल वादिंत्र और नौबत बज रही थी। झालर घण्टा बज रहे थे और भक्तजन जय-जयकार करते थे। दिन में तो पूजन होती थी और रात्रि में जागरण, उसमें सभी भक्ति करते थे और तीर्थंकर प्रभु के पंच कल्याणक के अभिनव दृश्य होते थे। अधिक क्या वर्णन करें ? उसके वर्णन का पार आवे, ऐसा नहीं है। मेहमानों का और यात्रियों का सम्मान करके षट्रस भोजन कराया जाता था। इस प्रकार आनन्दपूर्वक सात दिन व्यतीत होने

पर महापूजन पूर्ण हुई और आठवें दिन जिनेन्द्रदेव की महान रथयात्रा की तैयारी हुई। श्रृंगारित हाथी स्वर्ण के रथ को चला रहे थे।

प्रतिष्ठा में इन्द्र-इन्द्राणी की विधि आने पर राजकुमारी के मन में अभिमान से ऐसा विचार आया कि कुँवर मुझे ही इन्द्राणी रूप से स्वीकार करेगा, मनोवती को नहीं। पंचों के कान में यह बात आने पर उन्हें चिन्ता हुई और वे राजदरबार में आये। पंचों का आदर करके राजा ने पूछा—कहो, आपको किसने सताया है कि जिससे दरबार में आना पड़ा? तब समस्त पंचों ने हाथ जोड़कर कहा—महाराज! जिनमन्दिर की प्रतिष्ठा का महान उत्सव चलता है, उसमें मनोवती और राजकुमारी—इन दोनों में से कौन इन्द्राणी हो? आपकी इस सम्बन्ध में क्या सलाह है? तब न्यायवन्त राजा ने कहा—मनोवती सुन्दरी की दर्शन प्रतिज्ञा के कारण ही यह जिनमन्दिर बना है, इसलिए वही इन्द्राणी होगी। यह सुनकर पंच लोग जिनमन्दिर आ पहुँचे और राजा का हुक्म कह सुनाया। कुँवर और मनोवती ने इन्द्र-इन्द्राणी होकर महान आनन्दोल्लास से भगवान का पंच कल्याणक मनाया और प्रतिष्ठा विधिपूर्वक फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन परम भक्तिपूर्वक जिनमन्दिर की वेदी पर जिनेन्द्र भगवान को विराजमान किया। सर्वत्र जय-जयकार छा गया, चारों ओर मंगल वाद्यिंत्र बजने लगे। इस प्रकार जिनेन्द्र भगवान की प्रतिष्ठा होने पर मनोवती को अपार आनन्द हुआ। वीतराग जिनबिम्ब के सन्मुख चैतन्य ध्यान की स्फुरणा होने पर वह सम्यग्दर्शन को प्राप्त हुई।

आठ दिन का महान उत्सव पूर्ण होने पर नौवें दिन यात्रियों को सम्मानपूर्वक विदाई प्रदान की गयी। हस्तिनापुर और बल्लभीपुर के यात्रियों को थोड़े दिन अधिक रोककर बाद में हर्षपूर्वक विदाई

दी गयी। सब यात्री अपने-अपने गाँव में जाकर प्रतिष्ठा महोत्सव के आनन्द की चर्चा करने लगे।

यह विधिसों जिनभवन की, करी प्रतिष्ठा सार।
धन्य जन्म तिनको अबै, धन्य तिनको अवतार॥

अब इस कथा को यहीं खड़ी रखकर, हम बल्लभीपुर अर्थात् कुँवर के मूल गाँव में जाकर यह देखते हैं कि वहाँ क्या हो रहा है ?

★ ★ ★

बल्लभीपुर में पुनरागमन

बल्लभीपुर के यात्री अपनी नगरी में पहुँचे और वहाँ जाकर राजा से सम्पूर्ण वृत्तान्त बताते हुए कहा—हे महाराज! रत्नपुरी में जिसने यह महा प्रतिष्ठा महोत्सव कराया है, वह तो अपनी नगरी के हेमदत्त सेठ का ही पुत्र बुधसेन है। गजमोती के भण्डार उसके घर में भरे थे, उसकी सहधर्मिणी ने गजमोती द्वारा भगवान की पूजा की प्रतिज्ञा की थी, जब आपने गजमोती माँगे थे, तब आपके भय के कारण सेठ ने उस पुत्र को घर में से निकाल दिया था; मनोवती की दर्शन प्रतिज्ञा के प्रभाव से उसका भाग्योदय हुआ है और वह रत्नपुरी का राजदामाद बना है। मनोवती के कहने से उस कुँवर ने जिनमन्दिर बनाया और जिनेन्द्र भगवान की प्रतिष्ठा का महान उत्सव किया।

प्रजाजनों से यह बात सुनकर राजा को बहुत पश्चात्ताप हुआ कि अरे! ऐसे साधर्मी पुरुष को मेरे भय के कारण नगरी में से उसके पिता ने निकाल दिया और मुझे इसकी खबर भी नहीं पड़ी। उसकी धर्मपत्नी ने दर्शन प्रतिज्ञा ली थी, इस बात का भी मुझे कुछ परिज्ञान

नहीं हुआ और मेरे भयवश उन्हें घर छोड़ना पड़ा ! अरे ! मेरे समान पापी कौन है ? इस प्रकार राजा को मन में बहुत दुःख हुआ। तुरन्त ही उसने मन्त्री को बुलाया और कहा—तुम अभी जाकर कुँवर को और उसकी पत्नी को मानसहित यहाँ बुलाकर लाओ। इसमें जरा भी विलम्ब मत करो।

तब मन्त्री ने कहा कि वह तो रत्नपुर में राज्य करता है, वह यहाँ क्यों आयेगा ?

राजा ने कहा—मन्त्रीवर ! तुम कुँवर से जाकर यह कहना कि हे कुँवर ! यदि तुम बल्लभीपुर नगरी में वापिस नहीं आओगे तो राजा के प्राण छूट जाएँगे।

यह सुनकर मन्त्रीगण तुरन्त रत्नपुरी की ओर चल दिये। वहाँ पहुँचने पर कुँवर ने उनका बहुत आदर-सत्कार किया। जिनमन्दिर देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए और तत्पश्चात् कुँवर से मिलकर कहा कि राजा ने आपको बल्लभीपुर ले जाने के लिये हमें भेजा है, इसलिए आप पधारो... और हमारी भूलचूक हुई हो, उसे माफ करो।

प्रथम तो कुँवर ने बल्लभीपुर जाने की अनिच्छा बतलायी परन्तु जब मन्त्री ने कहा कि यदि आप नहीं आओगे तो राजा प्राण त्याग देंगे, तब मनोवती ने कुँवर को समझाया और कहा कि अपना पूरा परिवार यहाँ है, बल्लभीपुर में तो परिवार का नाम भी नहीं रहा और यहाँ तो आपके माता-पिता को या परिवार को कोई पहिचानता भी नहीं है, सब लोग आपको राजा के दामादरूप से ही पहिचानते हैं, इसलिए हे स्वामी ! हम अपने प्रदेश में जाएँगे।

यह सुनकर कुँवर ने बल्लभीपुर जाने की तैयारी की और राजा

से प्रेमपूर्वक अनुमति प्राप्त कर ली। रत्नपुरी के जिनमन्दिर में अति भक्तिपूर्वक दर्शन करके तथा गजमोती के पुँज चढ़ाकर पूरा परिवार बल्लभीपुर की ओर चल दिया; साथ में हाथी, घोड़े, रथ और वैभव का पार नहीं था। माता-पिता, छह भाई, भाभियाँ—इन सब परिवार सहित गाजते-बाजते बल्लभीपुर की ओर गमन किया। अरे! एक समय जो भीख माँगने के लिये इस नगरी में आये थे, वे अभी धूमधाम से जा रहे हैं, यह सब प्रताप दर्शन प्रतिज्ञा का है, ऐसा जानकर सब नर-नारियों को प्रतिदिन भगवान के दर्शन की प्रतिज्ञा करना चाहिए।

इस प्रकार चलते-चलते वे थोड़े ही दिनों में हस्तिनापुर आ पहुँचे, वहाँ उनके ससुर ने (मनोवती के पिता ने) उनका बहुत सम्मान किया। सबको षट्रस भोजन कराया। वहाँ दो दिन रुककर अपने गन्तव्य की ओर प्रस्थान किया और थोड़े ही दिनों में बल्लभीपुर आ पहुँचे। राजा को इस बात का पता पड़ते ही नगर में ढिंढ़ोरा पीटकर धूमधाम से इनका स्वागत किया। राजा स्वयं कुँवर से मिलकर अत्यधिक प्रसन्न हुआ और सबको अपने महल में लाकर बहुत सम्मान किया। साथ ही दर्शन प्रतिज्ञा की बहुत प्रशंसा की। नगरजनों को भी बुधसेनकुमार और मनोवती को देखकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। देखो, यह जिनदर्शन की महिमा! इसके प्रताप से पापकर्म नष्ट हो जाते हैं और जहाँ जाए, वहाँ जीव को लाभ ही होता है। राजमहल से पूरा परिवार अपने घर आया, मुख्य दरवाजे से सबने महल में प्रवेश किया। मनोवती पीछे थी, उसने दरवाजे में पैर रखा तो तुरन्त ही वहाँ से खजाना निकला। जहाँ वह जाए और जहाँ वह बैठे, वहाँ छप्पन करोड़ दीनार के ढ़ेर हों, पुण्योदय का ऐसा

फल आया। वह घर में से गयी, तब सेठ की लक्ष्मी भी चली गयी और वह फिर से घर में आयी तो लक्ष्मी की वृद्धि होने लगी। उसके महल पर छप्पन ध्वजा फहराने लगी। देश-देश का व्यापार शुरु हुआ। जिनमन्दिर में उसने विशाल पूजा रचायी, बहुत दान दिया और साधर्मियों का सम्मान किया। इस प्रकार मनोवती आनन्दपूर्वक धर्म आराधना करने लगी।

★ ★ ★

मुनिदर्शन और सम्यक्त्व प्राप्ति

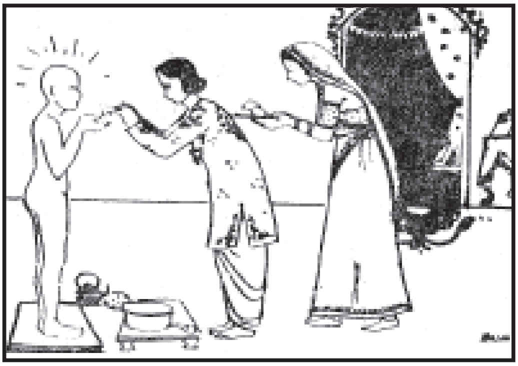

एक दिन सहज योग से श्री जिनधर मुनिराज उस बल्लभीपुर नगर में पधारे। जिन मुनिराज के पास स्वयं ने दर्शन प्रतिज्ञा ली थी, उन मुनिवर के दर्शन से मनोवती को अपार हर्ष हुआ... और बुधसेनकुमार सहित परम भक्तिपूर्वक मुनिराज को आहारदान किया। घर में आनन्द... आनन्द... छा गया... श्री मुनिराज के उपदेश से बुधसेनकुमार ने भी सम्यग्दर्शन का ग्रहण किया और उनके समस्त परिवार ने दर्शन प्रतिज्ञा अंगीकार की... हे पाठक! तुम भी मनोवती की तरह जिनवरदेव की आराधना करके सम्यक्त्व को ग्रहण करो।

अन्त में जिनदर्शन की महिमा करते हुए कथाकार कवि लिखते हैं कि —

इह विध सों सुन्दरी धर आप, दर्शप्रतिज्ञा को परभाव;
दर्शन करे पमरपद होय, दर्शन चक्रवर्ती गुण सोय।
दर्शन तें इन्द्रासन पाय, दर्शन फल फणपति गुणगाय;
बहुत बात को कहे बढ़ाय, दर्शन तें त्रिभुवन के राय।
जो जन दर्शन करे न कोय, पशु समान नारी नर होय।
तातैं सुनियो सब नरनार, कीने दर्शप्रतिज्ञा सार।

अब यहाँ कोई प्रश्न करे कि जिसे जिनदर्शन की प्रतिज्ञा हो और कहीं जिनदर्शन न मिलते हों तो उसे क्या करना?

उसका उत्तर—जब तक जिनदर्शन मिल सकें, तब तक तो दर्शन के बिना नहीं रहना परन्तु ऐसा ही योग बने कि जहाँ जिनदर्शन न हों तो मन में जिनदर्शन की भावनापूर्वक उस दिन उपवास अथवा एकासन करे, इतनी शक्ति न हो तो भोजन के समय जो वस्तुएँ हों, उनमें से एक वस्तु का त्याग करे—इस प्रकार दर्शन प्रतिज्ञा का पालन करे।

तातैं नरनारी सुन लेहु, दर्शप्रतिज्ञा पालहु येहु।
दर्शसमान और न होय, दर्शसमान न जग में कोय।
तातैं दर्शप्रतिज्ञा लेय, दर्शन बिन भोजन न करेव।
दर्शन बिन धिक जीवन होय, यह निश्चयकर जानो सोय।
दर्शनकथा पूरण भई, 'भारामल्ल' प्रगट कर इह।
भूलचूक जो कछू भी होय, पंडित शुद्ध करो सब कोय।
मैं मतिहीन कही अतिकार क्षमियो बुधजन लघु निरधार।
पढ़ें सुने जन जो मन लाय, जन्म जन्म के पातक जाय।

❁ प्रशस्ति ❁

तीर्थधाम स्वर्णपुर सौराष्ट्र देश मंझार
सीमन्धर जिनदेव के दर्शन आनन्दकार
जहाँ गुरु कहान विराजते अनेक सन्त के साथ
साधर्मी सब सेवते श्री जिन शास्त्र सुपाठ
जिनमन्दिर जिनदेव का अतिशय भव्य उदार
पच्चीस वर्ष पूरण हुए उत्सव मंगलकार।
दो हजार ब्यालीस की दूज फाल्गुन शुक्ल
जिनवर प्रभु की भक्ति से करि कथा सुखकार
प्रगटी सन्त श्री मुख से यह दर्शनकथा सुसार
सुनते भक्ति उल्लसी सब बोलो जय-जयकार
'हरि' वन्दे जिनचरण में अतिशय भक्ति सहित
जिनवर प्रभु शरण गह पावे आतम हित।

★ ★ ★

श्री जिनेन्द्र प्रभु के प्रति परम भक्ति से लिखी हुई यह दर्शन कथा पढ़कर-सुनकर सभी जिनेन्द्र भक्ति में वृद्धि करो—यही भावना।

एक था मेंढ़क

ढाई हजार वर्ष पहले की बात है। जिस समय भगवान महावीर इस भारतभूमि पर विचरण करते थे.... और धर्म का उपदेश देते थे।

महावीर प्रभु एक बार राजगृही नगरी में पधारे। राजगृही नगरी बहुत ही रमणीय थी। वहाँ श्रेणिक राजा राज्य करते थे। वे राजा जैनधर्म के महान भक्त थे।

एक दिन माली ने आकर राजा हो समाचार दिया कि नगरी के पास वैभार पर्वत पर महावीर प्रभु पधारे हैं।

श्रेणिक राजा यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और माली को बहुत पुरस्कार दिया.... और नगरी में ढिंढ़ोरा पिटवाया 'महावीर प्रभु पधारे हैं, सभी लोग उनके दर्शन करने के लिये चलो,... उनके उपदेश सुनने के लिये चलो।'

राजा हाथी के ऊपर बैठकर भगवान के दर्शन के लिये निकले।

बाजा बजानेवाले ने ढोल बजाया।

राजा के साथ हजारों नगरजन दर्शन करने के लिये जा रहे थे।

यह सब देखकर एक मेंढ़क के मन में भी ऐसा भाव आया कि मैं भी भगवान के दर्शन करने के लिये जाऊँ, इसलिए मुँह में एक फूल लेकर वह भगवान के दर्शन के लिये चला। भक्तिभाव से वह दौड़ता हुआ जा रहा था—

मेंढ़क मेंढ़क दौड़ा जाये, मुँह में फूल लेकर जाये।
वीर प्रभु के दर्शन को जाये, जिसे देखकर आनंद होते।

डग... डग... डबक...। टब... टब... टबक।

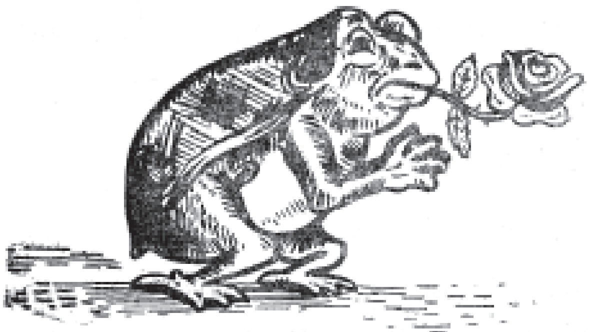

मेंढ़क भाई तो चले जा रहे थे, उसके हृदय में असीम आनंद उमड़ रहा था। पीछे से राजा श्रेणिक का हाथी भी चला आ रहा था। राजा हाथी पर बैठकर जा रहे थे और मेंढ़क भाई कूदता-कूदता जा रहा था... दोनों को भगवान के दर्शन की भावना थी, दोनों को भगवान के प्रति अपार श्रद्धा-भक्ति थी।

खुशी-खुशी मेंढ़क छलाँग मारते हुए जा रहा था। टब... टब... टबक... डग... डग... डबक...।

उसको आस-पास का कोई भान नहीं था। एक ही धुन थी कि वीर प्रभु का दर्शन करूँ। इतने में राजा के हाथी का पैर उसके ऊपर पड़ गया। अरे रे! मेंढ़क के ऊपर हाथी का पाँव! फिर वह कहाँ से बचे?

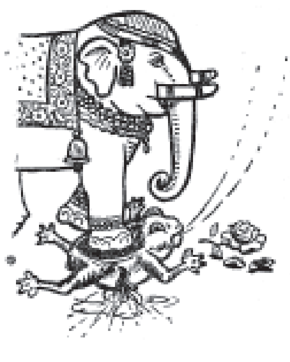

मेंढ़क तो मर गया—

मेंढ़क-मेंढ़क दौड़ा जाये। वीर प्रभु की पूजा की जाये।

रास्ते में वह मर जाये। मर कर वह देव हो जाये।

मेंढ़क तो हाथी के पैर के नीचे दब

गया और मर गया... परन्तु मरते–मरते भी भगवान की पूजा करने की भावना उसने छोड़ी नहीं, इसलिए इस भावनापूर्वक मरकर वह देव हुआ।

इधर राजा श्रेणिक वैभार–पर्वत पर महावीर प्रभु के समवसरण पहुँचे और भगवान की शोभा देखकर उन्हें अपार आनन्द हुआ। अहा, भगवान की शोभा (वैभव) की क्या बात!! भगवान की सभा में गौतम गणधर और हजारों मुनि बैठे हैं, चन्दना सती आदि छत्तीस हजार आर्यिकायें हैं, लाखों श्रावक–श्राविकायें हैं और असंख्य देव–देवी हैं, सिंह और खरगोश, हाथी और हिरण, बन्दर और बाघ, सर्प और मोर—ये सभी बैठे हैं और भगवान की वाणी सुन रहे हैं।

श्रेणिक राजा ने बहुत भक्ति से भगवान के दर्शन किये और क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त किया तथा तीर्थंकर नामकर्म बाँधा।

इसी समय आकाश में से एक देव उतरा और बहुत भक्ति भाव से भगवान के दर्शन करने लगा। उसके मुकुट में मेंढ़क का निशान था। उसे देखकर श्रेणिक राजा को बहुत आश्चर्य हुआ और उन्होंने भगवान से पूछा—'हे नाथ! यह देव कौन है?'

तब भगवान की वाणी में आया 'ये तुम्हारी राजगृही नगरी के नागदत्त सेठ का जीव है, वह सेठ मरकर मेंढ़क हुआ। उसे अपना पूर्वभव याद आया और वह तुम्हारे साथ मुँह में फूल लेकर दर्शन करने के लिये आ रहा था, इसी बीच वह तुम्हारे हाथी के पैर के नीचे दबकर मर गया और मरकर देव हुआ। वहाँ अवधिज्ञान से उसे याद आया कि भगवान के दर्शन–पूजन की भावना के प्रताप

से मैं मेंढ़क से देव हुआ हूँ, इसलिए वह यहाँ आकर तुम्हारे ही साथ दर्शन–पूजन कर रहा है।'

भगवान के श्रीमुख से यह बात सुनकर उस देव को बहुत हर्ष हुआ और भगवान के उपदेश को सुनकर उसने भी सम्यग्दर्शन प्राप्त किया।

प्रिय पाठकों! तुम भी मेंढ़क के समान भगवान की भक्ति–पूजा करके अपनी आत्मा को समझ लो और स्वर्ग–मोक्ष को पाओ।

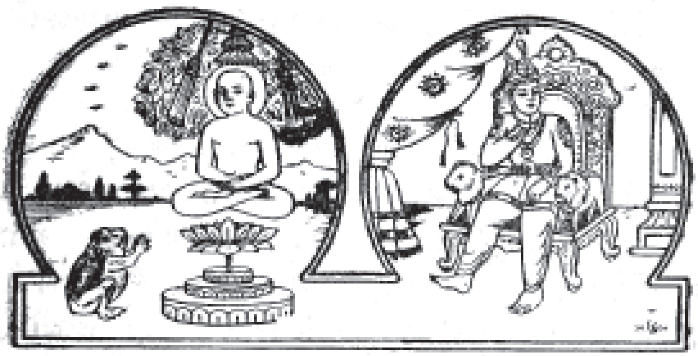

हे तीर्थपति! तुम्हारे वन्दन–ध्यान से मेंढ़क भी देव हो जाते हैं।

परिशिष्ट–1

श्री जिनवरदर्शन–स्तोत्र

(पद्मनन्दी–पच्चीसी)

हे जिनेश! हे प्रभो! आपको देखने पर मेरे नेत्र सफल होते हैं तथा मेरा मन और शरीर ऐसा मालूम होता है कि मानों अमृत से ही शीघ्र सींचा गया हो॥ 1॥

हे जिनेन्द्र! आपको देखने पर दृष्टि को रोकनेवाला मोहरूपी अन्धकार इस रीति से सर्वथा नष्ट हो गया कि मैंने जैसा वस्तु का स्वरूप था, वैसा देख लिया॥2॥

हे जिनेन्द्र! हे प्रभो! आपको देखने से परमानन्द से भरे हुए अपने मन को मैं ऐसा मानता हूँ, मानों मैं ही मोक्ष को साक्षात् प्राप्त हो गया होऊँ॥3॥

हे जिनवर! आपको देखने पर प्रबल पाप नष्ट हो गया – ऐसा मुझे मालूम हुआ, सो ठीक ही है, क्योंकि सूर्य का उदय होने पर रात्रि का अन्धकार कितने काल तक रह सकता है?॥4॥

हे जिनेन्द्र! आपको देखने से ऐसे किसी उत्तम पुण्यों के समूह की प्राप्ति होती है कि जिसकी कृपा से यह जन (मनुष्य) इसलोक तथा परलोक दोनों की सिद्धियों का स्वामी हो जाता है॥5॥

हे जिनेश! हे प्रभो! आपको देखने से उस पुण्य–लाभ को मानता हूँ, जिस पुण्य–लाभ से असाधारण सुख की निधि तथा अविनाशी ऐसे मोक्ष पद की प्राप्ति होती है॥6॥

हे स्वामिन्! हे जिनेन्द्र! आपको देखने से मुझे ऐसा उत्तम

सन्तोष हुआ है कि जिस सन्तोष के सामने इन्द्र का ऐश्वर्य भी मेरे हृदय में तृष्णा के लेश को भी उत्पन्न नहीं करता ॥7 ॥

हे जिनेन्द्र! समस्त प्रकार के विकारों से रहित तथा परम शान्त ऐसे आपको देखकर जिस मनुष्य की दृष्टि को आनन्द नहीं होता, उस मनुष्य के अपने जन्मों, अर्थात् भवों का नाश भी नहीं होता ॥8 ॥

हे प्रभो! हे जिनेन्द्र! आपको देखकर भी, जो कभी -कभी मेरा मन दूसरे-दूसरे कार्यों से आकुलित हो जाता है, उसमें मेरे पूर्वोपार्जित कर्म का ही दोष है ॥9 ॥

हे जिनवर! हे प्रभो! आपके दर्शन से मेरे दूसरे जन्मों की तो बात दूर ही रहो, किन्तु इस जन्म में भी मुझे नाना प्रकार के सुखों की प्राप्ति होती है और मेरे समस्त पाप दूर भाग जाते हैं ॥10 ॥

हे प्रभो! हे जिनवर! आपके दर्शनों के होने के कारण समस्त दिनों में आज का दिन उत्तम तथा सफल है; ऐसा जानकर पट्ट-बन्धन किया ॥11 ॥

हे प्रभो! हे जिनेश्वर! आपके देखने से यह जो बहुमूल्य आपका मन्दिर है, वह मेरे लिए समस्त प्रकार की लक्ष्मी के संकेत घर के समान है – ऐसा मुझे मालूम पड़ता है ॥12 ॥

हे प्रभो! हे जिनेन्द्र! आपके देखने से जो मेरा क्षेत्र (शरीर) भक्तिरूपी जल से समाश्रित हुआ (सींचा गया), वह शरीर रोमाञ्चों के बहाने से ऐसा शोभित होता है; मानों अंकुरस्वरूप से परिणत पुण्य बीज ही है ॥13 ॥

हे प्रभो! हे जिनेन्द्र! सिद्धान्तरूपी अमृत के गम्भीर समुद्र आपके देखने पर ऐसा कौन-सा ज्ञानी होगा जो 'रागादि दोषों से जिनकी आत्मा मलिन हो रही है' – ऐसे देवों को मानेगा? ॥14 ॥

हे प्रभो! हे जिनेश! यदि मनुष्य का मन, मिथ्यात्वरूपी कलङ्क से कलङ्कित नहीं हुआ हो तो वह पुरुष आपके दर्शन से अत्यन्त दुर्लभ मोक्ष को भी भलीभाँति प्राप्त कर लेता है ॥15॥

हे प्रभो! जो मनुष्य आपको इस चाम के नेत्र से भी देख लेता है, उस मनुष्य को उस अपूर्व पुण्य की प्राप्ति होती है, जो पुण्य आगे केवलदर्शन तथा केवलज्ञानरूपी नेत्रों को उत्पन्न करता है ॥16॥

हे प्रभो! हे जिनेन्द्र! जिस मनुष्य ने आपको देख कर भी अपनी आत्मा को कृतकृत्य नहीं माना, वह मनुष्य नियम से संसाररूपी समुद्र में मज्जन तथा उन्मज्जन करेगा; अर्थात्, जिस प्रकार मनुष्य, समुद्र में उछलता तथा डूबता है; उसी प्रकार वह मनुष्य बहुत काल तक संसार में जन्म-मरण करता हुआ भ्रमण करेगा ॥17॥

हे प्रभो! हे जिनेश! वास्तविक दृष्टि से आपके देखने पर जो कुछ हमें (आनन्द) होता है, वह यद्यपि हमारे मन में स्थित है तो भी वह वचन के अगोचर ही है; इसलिए हम उसके विषय में क्या कहें? ॥18॥

हे प्रभो! हे जिनेन्द्र! देखने योग्य पदार्थों की सीमा के विशेष स्वरूप, अर्थात् केवलज्ञानस्वरूप आपको देखने पर मैं दर्शनविशुद्धि को प्राप्त हुआ और इस समय जितने बाह्य पदार्थ हैं, वे मेरे नहीं हैं ॥19॥

हे भगवन्! आपको देख कर मनुष्यों की दृष्टि अधिक सुखी तथा अत्यन्त निर्मल होती है; फिर भला कौन बुद्धिमान् मनुष्य उस दृष्टि को सुखकारक – ऐसे सूर्य का दर्शन करे? अर्थात् कोई नहीं ॥20॥

हे जिनेन्द्र! आपको समस्त दोषों से रहित, ज्ञानवान और वीर देखकर ऐसा कौन मनुष्य है; जिसकी दृष्टि जड़, दोषाकर और

आकाश में रहनेवाले चन्द्रमा में प्रीति करेगी? ॥21॥

हे प्रभो! हे जिनेन्द्र! आपके देखने पर, जिस प्रकार सुबह के समय पटबीजना (जुगनू) प्रभारहित हो जाता है; उसी प्रकार चिन्तामणि, कामधेनु और कल्पवृक्ष भी मेरे मन में प्रभारहित हो गये हैं ॥22॥

हे जिनेश! आपके देखने से जो मेरे मन में रहस्यमय प्रेमरस उत्पन्न हुआ है, वह प्रेमरस आनन्दाश्रुओं के ब्याज से भीतर से बाहर निकलता है – ऐसा मालूम होता है ॥23॥

हे प्रभो! हे जिनेन्द्र! जिस प्रकार चन्द्रमा में किरणों की माला (पंक्ति) आगे-आगे गमन करती है; उसी प्रकार आपके दर्शन से पुरुषों के सामने बिना बुलाए भी कल्याणों की परम्परा आगे-आगे गमन करती है ॥24॥

हे प्रभो! हे जिनेश्वर! आपके दर्शन से बिना पुष्पित भी समस्त दश दिशारूपी लता इष्ट पदार्थों को देती है तथा रत्नों से रहित भी आकाश रत्नों की वृष्टि करता है ॥25॥

जिस प्रकार चाँदनी के फैलने पर सरोवर में रात्रि-विकासी कमल शीघ्र ही प्रफुल्लित हो जाते हैं; उसी प्रकार हे जिनेश! आपके केवलदर्शन से ही भव्य जीव समस्त भयों से रहित तथा मोहरूप निद्रा से रहित सुखी हो जाते हैं ॥26॥

हे जिनेश! हे प्रभो! जिस प्रकार चन्द्रमा के उदय होने पर समुद्र शीघ्र ही उल्लास को प्राप्त होता है; उसी प्रकार आपके दर्शन से भी मेरे हृदय में अत्यन्त प्रसन्नता होती है ॥27॥

हे प्रभो! हे जिनेश! आपको देखकर मैं हृदय में इतना अधिक सुखी हुआ, मानो बहुत शीघ्र ही मेरे प्रयोजन सिद्ध होवेंगे – ऐसा मेरा मनोरथ ही सिद्ध हुआ ॥28॥

हे प्रभो! हे जिनेश! आपके दर्शन से यह जन्म भी मेरा परम मित्र बन गया, क्योंकि इस जन्म में रहनेवाले मुझे आपका दर्शन हुआ है ॥29॥

हे प्रभो! हे भगवन्! गाढ़ जो भक्ति, उस भक्ति से सहित जो भव्य जीव हैं, उनको आपके दर्शन से बात की बात में समस्त प्रकार की सिद्धियों की प्राप्ति हो जाती है ॥30॥

हे जिनेन्द्र! शुभगति की सिद्धि में एक असाधारण कारण – ऐसे आपके दर्शन करनेवालों में जिस प्राणी के प्राण कण्ठ में आ गये हैं, अर्थात् जो तत्काल मरनेवाला है – ऐसे उस प्राणी को भी उत्तम धीरता आ जाती है ॥31॥

हे जिनेश! आपके दर्शन से, आपके चरण-कमलों की प्राप्ति होने पर ऐसी कौनसी वस्तु बाकी रही जो मुझे न मिली हो? अर्थात् समस्त पदार्थों की सिद्धि हुई। इसलिए ऐसा कौनसा ज्ञानी है, जो आपके दर्शनों की इच्छा न रखता हो? अर्थात् समस्त ज्ञानी पुरुष आपके दर्शनों की इच्छा रखते हैं ॥32॥

हे जिनेश! जो भव्य जीव, पद्मनन्दि नाम के आचार्य द्वारा की गयी आपकी दर्शन स्तुति को तीनों काल पढ़ता है, वह भव्य जीव, संसाररूपी जाल का सर्वथा नाश कर देता है ॥33॥

हे भगवन्! हे जिनेन्द्र! आपको देखकर कहा हुआ, समस्त भव्य जनों के मनों को आनन्द देनेवाला और भव्य जीवों द्वारा पठ्यमान, अर्थात् जिसका सदा भव्य जीव पाठ करते हैं – ऐसा यह आपका दर्शन-स्तोत्र सदा इस पृथ्वी पर वृद्धि को प्राप्त हो ॥34॥

परिशिष्ट–2

जिनेन्द्र–दर्शन का भावपूर्ण उपदेश

भगवान की प्रतिमा देखते ही 'अहो, ऐसे भगवान!' इस प्रकार एक बार जो सर्वज्ञदेव के यथार्थ स्वरूप को लक्ष्यगत कर ले तो कहते हैं कि भव से तेरा बेड़ा पार है। प्रातः काल भगवान के दर्शन द्वारा अपने इष्ट–ध्येय को स्मरण करके बाद में ही श्रावक दूसरी प्रवृत्ति करे। इसी प्रकार स्वयं भोजन करने के पूर्व मुनिवरों को याद करे कि अहा, कोई सन्त–मुनिराज अथवा धर्मात्मा मेरे आँगन में पधारें और भक्ति–पूर्वक उन्हें भोजन करा करके पीछे मैं भोजन करूँ। देव–गुरु की भक्ति का ऐसा प्रवाह श्रावक के हृदय में बहना चाहिए। भाई! प्रातःकाल उठते ही तुझे वीतराग भगवान की याद नहीं आती, धर्मात्मा सन्त–मुनि याद नहीं आते और संसार के अखबार, व्यापार–धन्धा अथवा स्त्री आदि की याद आती है, तो तू ही विचार कर कि तेरी परिणति किस ओर जा रही है ?

भगवान सर्वज्ञदेव की श्रद्धापूर्वक धर्मी श्रावक को प्रतिदिन जिनेन्द्रदेव के दर्शन, स्वाध्याय, दान आदि कार्य होते हैं, उनका वर्णन चल रहा है, उसमें सातवीं गाथा से प्रारम्भ करके सत्रहवीं गाथा तक अनेक प्रकार से दान का उपदेश किया। जो जीव जिनेन्द्रदेव के दर्शन–पूजन नहीं करता तथा मुनिवरों को भक्तिपूर्वक दान नहीं देता, उसका गृहस्थपना पत्थर की नौका के समान भव–समुद्र में डुबोनेवाला है—ऐसा अब कहते हैं:—

यैर्नित्यं न विलोक्यते जिनपतिः नस्मर्यते नार्च्यते
न स्तूयेत न दीयते मुनिजने दानं न भक्तया परम्।
सामर्थ्ये सति यद्गृहाश्रमपदं पाषाणनावा समं
तत्रस्था भवसागरेतिविषमे मज्जन्ति नश्यन्ति च॥१८॥

अर्थ : जो मनुष्य समर्थ होने पर भी निरन्तर न तो भगवान का दर्शन ही करते हैं तथा न उनका स्मरण ही करते हैं और उनकी पूजा भी नहीं करते हैं तथा न उनका स्तवन करते हैं और न निर्ग्रन्थ मुनियों को भक्तिपूर्वक दान ही देते हैं, उन मनुष्यों का वह गृहस्थाश्रमरूप स्थान पत्थर की नाव के समान है तथा उस गृहस्थाश्रम में रहनेवाले गृहस्थ इस भयंकर संसाररूपी समुद्र में नियम से डूबते हैं और डूबकर नष्ट हो जाते हैं; इसलिए आचार्य उपदेश देते हैं कि जो भव्य जीव, गृहस्थाश्रम को तथा अपने जीवन और धन को पवित्र करना चाहते हैं, उनको जिनेन्द्र देव की पूजा-स्तुति आदि कार्य तथा उत्तमादि पात्रों के लिए दान अवश्य ही देना चाहिए ॥१८॥

हैं समर्थ पर नहीं करें जो जिन दर्शन-पूजन-स्तवन।
मुनिजन को नहीं दान करें जो उर में धरकर भक्ति परम॥
उन समर्थ का गृह-आश्रय पद है पत्थर की नाव समान।
उसमें बैठ डूबते गहरे भव सागर में लहें विनाश॥१८॥

सामर्थ्य होते हुए भी जो गृहस्थ हमेशा परम भक्ति से जिननाथ के दर्शन नहीं करता, अर्चन नहीं करता और स्तवन नहीं करता, तथा परम भक्ति से मुनिराजों को दान नहीं देता, उसका गृहस्थाश्रमपद पत्थर की नाव के समान है। पत्थर की नौका के समान गृहस्थपद में स्थित हुआ वह जीव अत्यन्त भयंकर भवसागर में डूबता है और नष्ट होता है।

जिनेन्द्रदेव—सर्वज्ञ परमात्मा का दर्शन, पूजन, यह श्रावक का हमेशा का कर्तव्य है। प्रतिदिन के छह कर्तव्यों में भी सबसे पहला कर्तव्य जिनदेव का दर्शन-पूजन है। प्रात:काल भगवान के दर्शन द्वारा निज के ध्येयरूप इष्टपद को स्मरण करके पश्चात् ही श्रावक दूसरी प्रवृत्ति करे। इसी प्रकार स्वयं भोजन के पूर्व मुनिवरों को याद करके, अहा! कोई सन्त-मुनिराज अथवा धर्मात्मा मेरे आँगन में

पधारें तो भक्तिपूर्वक उन्हें भोजन देकर पश्चात् मैं भोजन करूँ—इस प्रकार श्रावक के हृदय में देव-गुरु की भक्ति का प्रवाह बहना चाहिए। जिस घर में ऐसी देव-गुरु की भक्ति नहीं, वह घर तो पत्थर की नौका के समान डूबनेवाला है। छठवें अधिकार में (श्रावकाचार-उपासक संस्कार, गाथा ६५ में) भी कहा था कि दान बिन गृहस्थाश्रम पत्थर की नौका के समान है।

भाई! प्रातःकाल उठते ही तुझे वीतराग भगवान की याद नहीं आती, धर्मात्मा-सन्त-मुनि याद नहीं आते और संसार के अखबार, व्यापार-धन्धा अथवा स्त्री आदि की याद आती है तो तू ही विचार कि तेरी परिणति किस तरफ जा रही है?—संसार की तरफ या धर्म की तरफ? आत्मप्रेमी हो, उसका तो जीवन ही मानो देव-गुरुमय हो जाता है।

'हरतां फरतां प्रगट हरि देखुं रे...
मारुं जीव्युं सफल तब लेखुं रे...'

पण्डित बनारसीदासजी कहते हैं कि 'जिनप्रतिमा जिनसारखी' जिनप्रतिमा में जिनवरदेव की स्थापना है, उस पर से जिनवरदेव का स्वरूप जो पहिचान लेता है, उसीप्रकार जिनप्रतिमा को जिनसमान ही देखता है, उस जीव की भवस्थिति अति अल्प होती है, अल्पकाल में वह मोक्ष प्राप्त करता है। 'षट्खण्डागम' (भाग ६, पृष्ठ ४२७) में भी जिनेन्द्रदर्शन को सम्यक्त्व की उत्पत्ति का निमित्त कहा है तथा उससे निद्धत और निकाचितरूप मिथ्यात्व आदि कर्मसमूह भी नष्ट हो जाते हैं, ऐसा कहा है। जिसकी रुचि में वीतरागी-सर्वज्ञस्वभाव प्रिय लगा है और संसार की रुचि जिसे छूट गयी है, इसलिए निमित्त में भी ऐसे वीतराग निमित्त के प्रति उसे भक्तिभाव उछला है। जो परमभक्ति से जिनेन्द्र-भगवान का दर्शन नहीं करता, तो इसका अर्थ

यह हुआ कि उसे वीतरागभाव नहीं रुचता और तिरने का निमित्त नहीं रुचता, परन्तु संसार में डूबने का निमित्त रुचता है। जैसी रुचि होती है, वैसे सम्बन्धों की ओर रुचि जाए बिना नहीं रहती। इसलिए कहते हैं कि वीतरागी जिनदेव को देखते ही जिसे अन्तर में भक्ति नहीं उल्लसती, जिसे पूजा-स्तुति का भाव उत्पन्न नहीं होता, वह गृहस्थ समुद्र के बीच पत्थर की नाव में बैठा है। नियमसार में पद्मप्रभु मुनि कहते हैं कि—

भवभयभेदिनि भगवति भवतः किं भक्तिरत्र न शमस्ति?
तर्हि भवाम्बुधिमध्यग्राहमुखान्तर्गतां भवसि॥१२॥

भवभय को छेदन करनेवाले ऐसे इन भगवान के प्रति क्या तुझे भक्ति नहीं?—यदि नहीं तो तू भवसमुद्र के बीच मगर के मुख में है।

अरे! बड़े-बड़े मुनि भी जिनेन्द्रदेव के दर्शन और स्तुति करते हैं और तुझे जो ऐसा भाव नहीं आता और एकमात्र पाप में ही रचापचा रहता है तो तू भवसमुद्र में डूब जावेगा, भाई! यदि तुझे इस भवदुःख के समुद्र में डूबना न हो और उससे तिरना हो तो संसार के तरफ की तेरी रुचि बदलकर वीतरागी देव-गुरु की ओर तेरे परिणाम को लगा; वे धर्म का स्वरूप क्या कहते हैं, उसे समझ और उनके कहे हुए आत्मस्वरूप को रुचि में ले; तो भवसमुद्र से तेरा छुटकारा होगा।

भगवान की मूर्ति में 'यह भगवान हैं' ऐसा स्थापनानिक्षेप वास्तव में सम्यग्दृष्टि को ही होता है क्योंकि सम्यग्दर्शनपूर्वक प्रमाणज्ञान होता है; प्रमाणपूर्वक सम्यक्नय होता है; और नय के द्वारा सच्चा निक्षेप होता है। निक्षेप, नय बिना नहीं; नय, प्रमाण बिना नहीं; और प्रमाण, शुद्धात्मा की दृष्टि बिना नहीं। अहो! देखो तो सही, यह वस्तुस्वरूप!! जैनदर्शन की एक ही धारा चली आ रही है। भगवान

की प्रतिमा देखते ही 'अहो, ऐसे भगवान!' ऐसा एक बार भी यदि सर्वज्ञदेव का यथार्थ स्वरूप लक्ष्यगत कर लिया, तो कहते हैं कि भव से तेरा बेड़ा पार है।

यहाँ एकमात्र दर्शन करने की बात नहीं की, परन्तु प्रथम तो 'परम भक्ति' से दर्शन करने को कहा है, उसी प्रकार अर्चन (पूजन) और स्तुति करने को भी कहा है। सच्ची पहिचानपूर्वक ही परम भक्ति उत्पन्न होती है और सर्वज्ञदेव की सच्ची पहिचान हो, वहाँ तो आत्मा का स्वभाव लक्ष्यगत हो जाता है, अर्थात् उसे दीर्घ संसार नहीं रहता। इस प्रकार भगवान के दर्शन की बात में भी गहरा रहस्य है। मात्र ऊपर से मान ले कि स्थानकवासी लोग मूर्ति को नहीं मानते और हम दिगम्बर जैन अर्थात् मूर्ति को माननेवाले हैं—ऐसे रूढ़िगत भाव से दर्शन करे, उसमें सच्चा लाभ नहीं होता। सर्वज्ञदेव की पहिचान सहित दर्शन करे तो ही सच्चा लाभ होता है। (यह बात 'सत्तास्वरूप' में बहुत विस्तार से समझायी है।)

अरे भाई! तुझे आत्मा के तो दर्शन करना नहीं आता और आत्मा के स्वरूप को देखने हेतु दर्पण समान ऐसे जिनेन्द्रदेव के दर्शन भी तू नहीं करता तो तू कहाँ जावेगा। भाई! जिनेन्द्र भगवान के दर्शन-पूजन भी न करे और तू अपने को जैन कहलावे, ये तेरा जैनपना कैसा? जिस घर में प्रतिदिन भक्तिपूर्वक देव-गुरु के दर्शन-पूजन होते हैं; मुनिवरों आदि धर्मात्माओं को आदरपूर्वक दान दिया जाता है, वह घर धन्य है; इसके बिना घर तो श्मशानतुल्य है! अरे! वीतरागी सन्त अधिक क्या कहें? ऐसे धर्मरहित गृहस्थाश्रम को तो हे भाई! समुद्र के गहरे पानी में तिलांजलि दे देना!—नहीं तो यह तुझे डुबो देगा!

धर्मी जीव प्रतिदिन जिनेन्द्र भगवान के दर्शनादि करते हैं। जिस

प्रकार संसार का रागी जीव स्त्री-पुत्रादि के मुँह को अथवा चित्र को प्रेम से देखता है; उसी प्रकार धर्म का रागी जीव वीतराग-प्रतिमा का दर्शन भक्तिसहित करता है। राग की इतनी दशा बदलते भी जिससे नहीं बनती, वह वीतरागमार्ग को किस प्रकार साधेगा? जिस प्रकार प्रिय पुत्र-पुत्री को न देखे तो माता को चैन नहीं पड़ता, अथवा माता को न देखे तो बालक को चैन नहीं पड़ता; उसी प्रकार भगवान के दर्शन बिना धर्मात्मा को चैन नहीं पड़ता। 'अरे रे! आज मुझे परमात्मा के दर्शन न हुए, आज मैंने मेरे भगवान को नहीं देखा, मेरे प्रिय नाथ के दर्शन आज मुझे नहीं मिले!' इस प्रकार धर्मी को भगवान के दर्शन बिना चैन नहीं पड़ता। (चेलना रानी को जिस प्रकार श्रेणिक के राज्य में पहले चैन नहीं पड़ता था; उसी प्रकार।) अन्तर में अपने धर्म की लगन है और पूर्णदशा की भावना है; इसलिए पूर्णदशा को प्राप्त भगवान को मिलने हेतु धर्मी के अन्तर में तीव्र इच्छा आ गयी है; साक्षात् तीर्थंकर के वियोग में उनकी वीतरागप्रतिमा को भी जिनवर समान ही समझकर भक्ति से दर्शन-पूजा करता है; और वीतराग के प्रति बहुमान के कारण ऐसी भक्ति-स्तुति करता है कि देखनेवालों के रोम-रोम पुलकित हो जाते हैं।—इस प्रकार जिनेन्द्रदेव के दर्शन, मुनिवरों की सेवा, शास्त्र-स्वाध्याय, दानादि में श्रावक प्रतिदिन लगा रहता है।

यहाँ तो मुनिराज कहते हैं कि शक्ति होने पर भी प्रतिदिन जो जिनदेव के दर्शन नहीं करता, वह श्रावक ही नहीं, वह तो पत्थर की नौका में बैठकर भवसागर में डूबता है। तो फिर वीतराग-प्रतिमा के दर्शन-पूजन का जो निषेध करे, उसकी तो बात ही क्या करना?— इसमें तो जिनमार्ग की अति विराधना है। अरे! सर्वज्ञ को पूर्ण परमात्मदशा प्रगट हो गयी, वैसी परमात्मदशा का जिसे प्रेम हो, उसे

उनके दर्शन का उल्लास आये बिना कैसे रहे? वह तो प्रतिदिन भगवान के दर्शन करके अपनी परमात्मदशारूप ध्येय को प्रतिदिन ताजा रखता है।

भगवान के दर्शन की तरह मुनिवरों के प्रति भी परमभक्ति होती है। भरत चक्रवर्ती जैसे भी महान आदरपूर्वक भक्ति से मुनियों को आहारदान देते थे और अपने आँगन में मुनि पधारें, उस समय अपने को धन्य मानते थे! अहा! मोक्षमार्गी मुनि के दर्शन भी कहाँ!!—यह तो धन्य भाग्य और धन्य घड़ी। मुनि के विरहकाल में बड़े धर्मात्माओं के प्रति भी ऐसा बहुमान का भाव आता है कि अहो, धन्य भाग्य, मेरे आँगन में धर्मात्मा के चरण पड़े! ऐसे धर्म के उल्लास से धर्मी श्रावक मोक्षमार्ग को साधता है और जिसे धर्म का ऐसा प्रेम नहीं, वह संसार में डूबता है। कोई कहे कि मूर्ति तो पाषाण की है!—परन्तु भाई! इसमें ज्ञानबल से परमात्मा का निक्षेप किया है कि—'यह परमात्मा है।'—इस निक्षेप का इन्कार करना, ज्ञान का ही इन्कार करने समान है। जिनबिम्ब-दर्शन को तो सम्यग्दर्शन का निमित्त माना है; उस निमित्त का भी जो निषेध करे, उसे सम्यग्दर्शन का भी ज्ञान नहीं है। समन्तभद्रस्वामी कहते हैं कि हमें तेरी स्तुति का व्यसन पड़ गया है। जिस प्रकार व्यसनी मनुष्य अपने व्यसन की वस्तु के बिना नहीं रह सकता, उसी प्रकार सर्वज्ञ के भक्तों को स्तुति का व्यसन है; इसलिए भगवान की स्तुति-गुणगान के बिना वे नहीं रह सकते। धर्मात्मा के हृदय में सर्वज्ञदेव के गुणगान चित्रित हो गये हैं।

अहा! साक्षात् भगवान देखने को मिलें—यह तो धन्य घड़ी है! कुन्दकुन्दाचार्य जैसों ने विदेह में जाकर सीमन्धनाथ को साक्षात् देखा।—इनकी तो क्या बात! यहाँ अभी तो ऐसा काल नहीं है। अरे! तीर्थंकरों का विरह, केवलियों का विरह, महान सन्त-मुनियों

का भी विरह—ऐसे काल में जिनप्रतिमा के दर्शन से भी धर्मी जीव भगवान के स्वरूप को याद करता है। जिसे वीतराग जिनमुद्रा को देखने की उमंग न हो, वह जीव संसार की तीव्र रुचि को लेकर संसार-सागर में डूबनेवाला है। वीतराग का भक्त तो वीतरागदेव का नाम सुनते ही और दर्शन करते ही प्रसन्न हो जाता है। जिस प्रकार सज्जन विनयवन्त पुत्र रोज सवेरे माता-पिता के पास जाकर विवेक से चरणस्पर्श करते हैं; उसी प्रकार धर्मी जीव, प्रभु के पास जाकर बालक जैसे होकर, विनय से प्रतिदिन धर्म-पिता जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करते हैं, उनकी स्तुति-पूजा करते हैं; मुनिवरों को भक्ति से आहारदान करते हैं। ऐसे वीतरागी देव-गुरु की भक्ति के बिना जीव मिथ्यात्व की नाव में बैठकर चारगति के समुद्र में डूबता है और बहुमूल्य मनुष्य-जीवन को नष्ट कर डालता है। अतः धर्म के प्रेमी जीव देव-गुरु की भक्ति के कार्यों में हमेशा अपने धन का और जीवन का सदुपयोग करें—ऐसा उपदेश है।

—इस प्रकार आचार्य, जिनेन्द्रदेव के दर्शन का तथा दान का उपदेश देकर अब दाता की प्रशंसा करते हैं। ●●●

અનુભૂતિ તીર્થ મહાન, સ્વર્ણપુરી સોહે
યહ કહાનગુરુ વરદાન, મંગલ મુક્તિ મિલે.